

कबीर पारख संस्थान, इलाहाबाद

का

इकतालीसवां वार्षिक अधिवेशन

दिनांक—22-23-24 अक्टूबर 2018

दिन—सोमवार, मंगलवार, बुधवार

क्वार शुक्ल त्रयोदशी, चतुर्दशी एवं पूर्णिमा

स्थल—कबीर आश्रम, कबीर नगर, इलाहाबाद

निवेदन

1. पारख प्रकाश प्रतिवर्ष जनवरी, अप्रैल, जुलाई एवं अक्टूबर में प्रकाशित होता है। यदि इन महीनों की आखिरी तारीख तक आपको अंक न मिले, तो इसकी शिकायत अवश्य भेजें, ताकि आपको दूसरी प्रति भेजी जा सके। देर से शिकायत मिलने पर दूसरी प्रति भेजने में हमें काफी असुविधा होती है।

2. आशा है यह पत्रिका आपके लिए रुचिकर, ज्ञानवर्धक एवं प्रेरणादायी सिद्ध हुई होगी तथा आगे भी आप इसके ग्राहक बने रहना पसन्द करेंगे और दूसरों को भी इसके ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करेंगे। इसे अधिक स्थायी तथा नियमित बनाने के लिए आप स्वयं इसके आजीवन ग्राहक तो बनें ही दूसरों को भी आजीवन ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करें।

3. यदि आपका शुल्क इस अंक के साथ समाप्त हो रहा है तो अगले अंक के लिए अपना शुल्क यथाशीघ्र भेज दें, जिससे अगला अंक आपको समय से मिल सके। पत्र तथा शुल्क भेजते समय अपना ग्राहक नं० अवश्य लिखें।

एक प्रति 13 रुपये,

वार्षिक 50 रुपये,

आजीवन 1250 रुपये

लेख, कविता, सदस्यता-शुल्क भेजने तथा सब प्रकार के पत्र व्यवहार का पता

पारख प्रकाश

संत कबीर मार्ग, प्रीतमनगर

इलाहाबाद-211011

Vist us : www.kabirparakh.com

E-mail : kabirparakh@yahoo.com

ग्राहक नं०

कबीर पारख संस्थान के लिए गुरुभूषण दास द्वारा प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, पन्ना लाल रोड, इलाहाबाद से मुद्रित

वर्ष 48

जुलाई-अगस्त-सितम्बर
2018

अंक 1

ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, एकता तथा मानव-धर्म-प्रेरक हिन्दी पत्रिका

<p>प्रवर्तक सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब श्री कबीर मन्दिर, बड़हरा पोस्ट—महोबाजार जिला—गोंडा, उ०प्र०</p> <p>आदि संपादक सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब</p> <p>संपादक धर्मेन्द्र दास</p> <p>आदि व्यवस्थापक प्रेम प्रकाश</p> <p>मुद्रक एवं प्रकाशक गुरुभूषण दास</p> <p>पारख प्रकाश इंटरनेट पर www.kabirparakh.com</p> <p>वार्षिक शुल्क : 50.00 एक प्रति : 13.00 आजीवन सदस्यता शुल्क 1250.00</p>	<h3>विषय-सूची</h3> <table border="0"> <tr> <td>कविता</td> <td>लेखक</td> <td>पृष्ठ</td> </tr> <tr> <td>ऐसे ही पथ पर चलकर</td> <td></td> <td>1</td> </tr> <tr> <td>समझें शाश्वत नियम को</td> <td>राधाकृष्ण कुशवाहा</td> <td>21</td> </tr> <tr> <td>दर्शन तेरा पाकर</td> <td>साध्वी संतुष्टि</td> <td>30</td> </tr> <tr> <td>सत्संग एक सहारा है</td> <td>ब्रह्मचारी रामलाल</td> <td>31</td> </tr> <tr> <td>कबीर कहाने वाले ने</td> <td>श्री हरद्वारी लाल</td> <td>38</td> </tr> <tr> <td>कबीर</td> <td>डॉ. अमृत सिंह यादव</td> <td>44</td> </tr> <tr> <td>स्तंभ</td> <td></td> <td></td> </tr> <tr> <td>पारख प्रकाश / 2</td> <td>व्यवहार वीथी / 22</td> <td>परमार्थ पथ / 32</td> </tr> <tr> <td>बीजक चिंतन / 45</td> <td></td> <td></td> </tr> <tr> <td>लेख</td> <td></td> <td></td> </tr> <tr> <td>अभिन्न कबीर</td> <td>श्री सुकन पासवान 'प्रज्ञाचक्षु'</td> <td>9</td> </tr> <tr> <td>हमारा पांडित्य हमें उनसे दूर कर देता है</td> <td>श्री सदानंद साही</td> <td>21</td> </tr> <tr> <td>दो दृष्टिकोण</td> <td>विवेकदास</td> <td>26</td> </tr> <tr> <td>आओ, लौट चलें, अब अपने घर को!</td> <td>श्री रणजीत कबीरपंथी</td> <td>39</td> </tr> <tr> <td>एकता बनाये रखें</td> <td>हीरेन्द्र दास</td> <td>51</td> </tr> <tr> <td>क्या वेद नसली वर्गीकरण का गवाह है?</td> <td>श्री धर्मदास</td> <td>52</td> </tr> <tr> <td>कबीर संत थे</td> <td></td> <td>58</td> </tr> <tr> <td>कहानी</td> <td></td> <td></td> </tr> <tr> <td>धोखा</td> <td>श्री भावसिंह हिरवानी</td> <td>31</td> </tr> <tr> <td>सच्ची कुर्बानी</td> <td>डॉ. अमरनाथ सिंह</td> <td>34</td> </tr> </table>	कविता	लेखक	पृष्ठ	ऐसे ही पथ पर चलकर		1	समझें शाश्वत नियम को	राधाकृष्ण कुशवाहा	21	दर्शन तेरा पाकर	साध्वी संतुष्टि	30	सत्संग एक सहारा है	ब्रह्मचारी रामलाल	31	कबीर कहाने वाले ने	श्री हरद्वारी लाल	38	कबीर	डॉ. अमृत सिंह यादव	44	स्तंभ			पारख प्रकाश / 2	व्यवहार वीथी / 22	परमार्थ पथ / 32	बीजक चिंतन / 45			लेख			अभिन्न कबीर	श्री सुकन पासवान 'प्रज्ञाचक्षु'	9	हमारा पांडित्य हमें उनसे दूर कर देता है	श्री सदानंद साही	21	दो दृष्टिकोण	विवेकदास	26	आओ, लौट चलें, अब अपने घर को!	श्री रणजीत कबीरपंथी	39	एकता बनाये रखें	हीरेन्द्र दास	51	क्या वेद नसली वर्गीकरण का गवाह है?	श्री धर्मदास	52	कबीर संत थे		58	कहानी			धोखा	श्री भावसिंह हिरवानी	31	सच्ची कुर्बानी	डॉ. अमरनाथ सिंह	34
कविता	लेखक	पृष्ठ																																																														
ऐसे ही पथ पर चलकर		1																																																														
समझें शाश्वत नियम को	राधाकृष्ण कुशवाहा	21																																																														
दर्शन तेरा पाकर	साध्वी संतुष्टि	30																																																														
सत्संग एक सहारा है	ब्रह्मचारी रामलाल	31																																																														
कबीर कहाने वाले ने	श्री हरद्वारी लाल	38																																																														
कबीर	डॉ. अमृत सिंह यादव	44																																																														
स्तंभ																																																																
पारख प्रकाश / 2	व्यवहार वीथी / 22	परमार्थ पथ / 32																																																														
बीजक चिंतन / 45																																																																
लेख																																																																
अभिन्न कबीर	श्री सुकन पासवान 'प्रज्ञाचक्षु'	9																																																														
हमारा पांडित्य हमें उनसे दूर कर देता है	श्री सदानंद साही	21																																																														
दो दृष्टिकोण	विवेकदास	26																																																														
आओ, लौट चलें, अब अपने घर को!	श्री रणजीत कबीरपंथी	39																																																														
एकता बनाये रखें	हीरेन्द्र दास	51																																																														
क्या वेद नसली वर्गीकरण का गवाह है?	श्री धर्मदास	52																																																														
कबीर संत थे		58																																																														
कहानी																																																																
धोखा	श्री भावसिंह हिरवानी	31																																																														
सच्ची कुर्बानी	डॉ. अमरनाथ सिंह	34																																																														

विशेष ध्यान शिविर

कबीर पारख संस्थान, इलाहाबाद के तत्त्वावधान में निम्न स्थलों पर निम्नांकित तिथियों पर विशेष ध्यान शिविर का आयोजन किया जा रहा है—

13 अगस्त से 19 अगस्त, 2018 : श्री कबीर संस्थान, नवापारा (राजिम), रायपुर, छत्तीसगढ़
सम्पर्क : 08720893818, 08827605799

1 सितंबर से 7 सितंबर, 2018 : कबीर पारख संस्थान, प्रीतमनगर, इलाहाबाद
सम्पर्क : 09451369965, 09451059832

उक्त ध्यान शिविरों में सीमित साधकों के लिए ही व्यवस्था रहेगी। अतः कोई भी साधक किसी भी शिविर में बिना पूर्व अनुमति के न आवे। जो साधक जहां के शिविर में भाग लेना चाहें, वहां के पते पर ही संपर्क करें, अन्य स्थल पर नहीं। जो साधक ध्यान शिविर के दौरान पूर्ण मौन पालन कर सकें तथा पूरी अवधि तक रुक सकें वे ही भाग लें। ध्यान शिविर में भाग लेने वालों का शहर, बाजार जाना वर्जित रहेगा।

निर्बंध

ENGLISH TRANSLATION

Kabir Bijak (Commentary)

Eternal Life

Art of Human Behaviour

Who am I?

What is Life?

Kabir Amritvani

The Bijak of Kabir (In Verses)

Kabir Bijak

(Elucidation Sakhi Chapter)

Saint Kabir and his Teachings

Life and Philosophy of Kabir

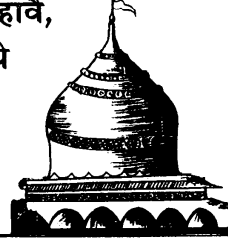
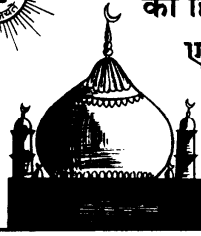
The Path of Salvation



सद्गुरवे नमः

को हिन्दू को तुरुक कहावै,
एक जिमी पर रहिये

—सन्त कबीर



मन मक्का दिल द्वारका, काया काशी जान।
दस द्वारे का देहरा, तामें ज्योति पिछान ॥ कबीर साखी ॥

वर्ष 48]

इलाहाबाद, आषाढ, वि. सं. 2075, जुलाई 2018, सत्कबीराब्द 620

[अंक 1

ऐसे ही पथ पर चलकर

जब धर्म जाति को लेकर, मानव मानव जलता था।
मैं बड़ा, नीच तू-कह कर, यह आर्यकाय गलता था॥ 1॥

आदर्श आर्य मुनियों के, टूटी माला सम बिखरे।
पाखण्ड दम्भ उत्पीड़न, हिंसा विलास थे निखरे॥ 2॥

भारत टुकड़ों में बँट कर, उसकी होली जलती थी।
मानवता दीन दलित थी, मिथ्या हन्ता पलती थी॥ 3॥

मैं आस्तिक, तू नास्तिक है, मैं दीनदार, तू काफर।
अपने हरफों में सबको, इलहाम गर्व था ऑफ़र॥ 4॥

योगी दरवेश सेवड़ा, संन्यासी और विरागी।
सब थे विवाद में लिपटे, सब थे हंकार के रागी॥ 5॥

ऐसे संक्रमण समय में, सम्राट संत इक आये।
मानव को मानवता का, वे निर्मल पाठ पढ़ाये॥ 6॥

है वर्गहीन मानवता, मुखरित उनकी वाणी में।
निष्पक्ष ज्ञान की प्रज्ञा, है उदित हुई ज्ञानी में॥ 7॥

उनका अपना नहीं कोई, इसलिए सभी अपने थे।
माया निर्लिप्त निराले, जागृति में, ना सपने थे॥ 8॥

ये राम रहीम के झगड़े, उनको थे सदा खटकते।
जिनको ले हिन्दू मुसलिम, आपस में रहे चटकते॥ 9॥

वेदों में और किताबों, में राम रहीम नहीं हैं।
ना हैं आकाश के ऊपर, ना तो पाताल में ही हैं॥ 10॥

ऐ काजी पण्डित सुन लो, जो राम रहीम तुम्हारे।
घट घट में बोल रहे हैं, इनको दुख मत दो प्यारे॥ 11॥

दिल दया रहम को तजकर, संध्या नमाज खाली है।
प्राणी से वैर बना कर, ईश्वर पूजा जाली है॥ 12॥

सब पूजा धर्म कर्म है, निर्मल मन वाणी काया।
मानव में प्रेम प्रसारण, अरु जीव मात्र पर दाया॥ 13॥

वे प्राण साम्य के फूँके, मानव समाज में बलकर।
अब भी जग सुधर सकेगा, ऐसे ही पथ पर चलकर॥ 14॥

कबीरपंथ और कबीर धर्म

कबीर उस स्वतंत्रचेता युगपुरुष का नाम है जिसने किसी से डरना नहीं जाना और जिसने किसी का मुलाहिजा किये बिना बेखौफ होकर बेलौस ढंग से अपनी बात कही और वही बात कही जो शाश्वत सत्य है। उनकी बात किसी एक वर्ण, वर्ग, जाति, सम्प्रदाय, मत-मजहब की न होकर सार्वभौमिक सत्ता, मानवमात्र के लिए है। जैसे कबीर का अर्थ महान होता है वैसे सद्गुरु कबीर सचमुच महान थे, अद्वितीय, अतुलनीय थे। उनकी तुलना किसी से नहीं की जा सकती। वे अपने समान आप स्वयं थे। उनकी कथनी-करनी-रहनी की एकता, निर्मल जीवन, निर्भीक व्यक्तित्व, दो टुक कहने की शैली से प्रभावित होकर लाखों लोग उनके अनुयायी-अनुगामी बन उनके पीछे चल पड़े थे क्योंकि उन्होंने मानव मात्र के लिए मानसिक-बौद्धिक-सामाजिक गुलामी से मुक्ति का, सच्ची स्वतंत्रता का, शाश्वत सत्य धर्म का, वास्तविक सुख-शांति-मोक्ष का मार्ग दिखाया था।

कबीर ने जो कुछ कहा था स्वतंत्र और निष्पक्ष होकर कहा था। उन्होंने किसी मत-मजहब-सम्प्रदाय, जिन्हें भूलवश धर्म कहा जाता है, के घेरे में बंधकर अपनी बात नहीं कही थी। वे तो स्वतंत्र आसमानी परिंदा थे, फिर वे किसी मत-मजहब-सम्प्रदाय के पिंजड़े में बंद कैसे हो सकते थे। उन्होंने न तो किसी महापुरुष को ईश्वर के अवतार, पुत्र या पैगम्बर माना और न अपने को किसी ईश्वर का अवतार, पुत्र या पैगम्बर कहा। यदि वे अपने को किसी ईश्वर का अवतार, पुत्र, पैगम्बर घोषित करते तो तत्काल लोग उन्हें वैसा स्वीकार कर लेते, जैसा कि बाद में कुछ कबीरप्रेमियों ने घोषित कर दिया है। कबीर ऐसे स्वतंत्र चिंतक पुरुष थे कि उन्होंने किसी भी पुस्तक-धर्मग्रन्थ

को अपौरुषेय, ईश्वरीयवाणी, इलहामी कलाम मानकर उसे स्वतः प्रमाण मानने से इंकार कर दिया और लोगों से यह कहा कि मेरी बातों को भी आंख मूंदकर मत मानो, किन्तु उसे ही मानो जो युक्तियुक्त, विवेकयुक्त, निर्णययुक्त सत्य हो।

जो लोग निष्पक्ष होकर कबीर-वाणी का अध्ययन-मनन नहीं करते और न निष्पक्ष होकर समझने का प्रयास करते हैं ऐसे लोग यह कहते हैं कि यह समझ में नहीं आता कि कबीर हिन्दू धर्म की बात कहते हैं या मुसलमान धर्म की। कुछ लोग कहते हैं कि कबीर हिन्दू-मुसलमान दोनों का खंडन करते हैं तब वे किस धर्म की बात कहते हैं, उनका धर्म क्या है? कुछ लोग कहते हैं कि कबीर के विचार कोई धर्म नहीं है किन्तु पंथ है और पंथ धर्म से छोटा होता है। ये सारी बातें नासमझी की हैं। और ऐसा वही लोग कहते हैं जो न पंथ को समझते हैं और न धर्म को। यदि पंथ और धर्म को उनके सही अर्थों में समझ लिया जाये तो ज्ञात हो जायेगा कि पंथ और धर्म अलग-अलग नहीं हैं, किन्तु एक ही है। जो पंथ है वही धर्म है और जो धर्म है वही पंथ है।

सबसे पहली बात यह है कि कबीर अपने को न हिन्दू कहते हैं और न मुसलमान कहते हैं किन्तु वे अपने को मनुष्य कहते हैं, क्योंकि कोई भी व्यक्ति न हिन्दू होकर जन्म लेता है और न मुसलमान होकर, किन्तु वह मनुष्य के रूप में जन्म लेता है। यदि कोई व्यक्ति न दाढ़ी रखा हो और न चोटी, न खतना करवाया हो और न जनेऊ पहना हो, कोई छाप-तिलक न लगाया हो तो उसे देखकर कोई नहीं बता सकता कि वह हिन्दू है या मुसलमान, किन्तु यह निश्चितता के साथ कह सकता है कि वह मनुष्य है। अतः हिन्दू-मुसलमान दोनों नाम झूठे हैं, सच है मनुष्य और मनुष्यता। सद्गुरु कबीर कहते हैं—

*झूठे गर्व भूलो मति कोई, हिन्दू तुरुक झूठ कुल दोई।
को हिन्दू को तुरुक कहावै, एक जिमी पर रहिये।
कहहिं कबीर राम रमि रहिये, हिन्दू तुरुक न कोई।*

(बीजक)

और भी—

हिन्दू कहैं तो मैं नहीं, मुसलमान भी नाहिं।

पाँच तत्व का पूतरा, गैबी खेलै माहिं॥

कहैं कबीर सुनो रे भोंदू, बोलनहारा तुरुक न हिन्दू॥

जो साफ शब्दों में घोषणा करते हैं कि न कोई हिन्दू है और न कोई मुसलमान वे कबीर अपने को हिन्दू या मुसलमान कैसे कहेंगे। कबीर पर हिन्दू या मुसलमान होने का लेबल लगाना या उन्हें जन्मजात हिन्दू या मुसलमान सिद्ध करने का प्रयास करना सिर्फ और सिर्फ नासमझी है। ऐसे नासमझ लोगों को कबीर भोंदू कहते हैं।

अब प्रश्न यह है कि कबीर हिन्दू धर्म की बात कहते हैं या मुसलमान धर्म की? यदि वे हिन्दू-मुसलमान किसी धर्म को नहीं मानते तो वे किस धर्म की बात कहते हैं, उनका धर्म क्या है? पहले हमें यह समझना होगा कि धर्म क्या है और हिन्दू-मुसलमान धर्म है या मजहब-सम्प्रदाय-समाज। धर्म वह है जो शाश्वत होता है और मजहब-सम्प्रदाय-समाज वह है जिसका उदय किसी काल खण्ड में होता है। धर्म वह है जो किसी व्यक्ति विशेष द्वारा प्रवर्तित नहीं किया जाता किन्तु जो सबको धारण करता है और जिसे धारण किये बिना, जिसका आचरण किये बिना कोई भी व्यक्ति सुख-शांति पूर्वक जीवन नहीं जी सकता। इसके विपरीत मजहब-सम्प्रदाय-समाज किसी व्यक्ति विशेष द्वारा प्रवर्तित किया जाता है और जिसको माने बिना भी मनुष्य सुख-शांति पूर्वक जीवन जी सकता है। अतः हिन्दू, मुसलमान धर्म नहीं हैं किन्तु समाज-मजहब-सम्प्रदाय हैं।

ऊपर कहा गया है कि समाज-मजहब-सम्प्रदाय का उदय-प्रवर्तन किसी कालखण्ड में होता है, वह शाश्वत नहीं होता और देश-काल के आयाम में उसके नियमों में परिवर्तन-परिशोधन-परिवर्धन होता रहता है, किन्तु धर्म शाश्वत होता है उसमें परिवर्तन-परिवर्धन नहीं होता। इसको हम थोड़ा विस्तार से समझें।

हिन्दू शब्द की उत्पत्ति आज से लगभग 2600 वर्ष पूर्व हुई है। कहा जाता है ईरान के शासक दारा ने

(549-525 ई.पू.) अपने ग्रन्थ में सर्वप्रथम हिन्दू शब्द का प्रयोग भारतवासियों के लिए किया था। हिन्दू शब्द किसी भारतीय भाषा का नहीं है, किन्तु फारसी भाषा का है। वेद, शास्त्र, उपनिषद्, ब्राह्मण, आरण्यक, सूत्र, रामायण, महाभारत जैसे किसी प्राचीन ग्रंथ में हिन्दू शब्द नहीं आया है। वेद, उपनिषद्, शास्त्र आदि के ऋषियों ने अपने को हिन्दू नहीं कहा है, क्योंकि उनके जमाने में हिन्दू शब्द था ही नहीं।

फारसी भाषा (जो ईरान-फारस की भाषा है) में स का ह हो जाता है अतः फारसियों ने सिन्ध नदी जो भारत की पश्चिम दिशा में बहती है उसको हिन्द नदी कहा, उसके पूर्व के देश को हिन्द देश तथा वहाँ के निवासियों को हिन्दू कहा, तब से हिन्दू शब्द प्रचलित हुआ और भारत के निवासी हिन्दू कहलाने लगे। चाहे वे किसी भी मत-मजहब-सम्प्रदाय के मानने वाले हों। आगे चलकर जो वेदों को अपना मूल धर्मग्रन्थ, राम-कृष्ण आदि को ईश्वर का अवतार मानने लगे तथा ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, गौरी, गणेश आदि की पूजा करने लगे वे अपने को हिन्दू कहने लगे। लेकिन ध्यान रहे चारों वेदों में अवतारवाद कहीं नहीं है और न वेदों में ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, गौरी, गणेश आदि की पूजा का विधान है। वेदों के अपने अलग देवता हैं, जिनकी आज हिन्दू समाज में कहीं पूजा नहीं होती।

खास बात यह है कि हिन्दू शब्द का प्रचलन आज से लगभग 2600 वर्ष पूर्व हुआ है, उसके पहले हिन्दू शब्द था ही नहीं। बौद्ध मत तथागत बुद्ध के बाद आज से 2500 वर्ष पूर्व शुरू हुआ। जैन मत पुराना है किन्तु जैनमत का ज्यादा विकास जैनों के चौबीसवें तीर्थंकर महावीर स्वामी के बाद हुआ। महावीर स्वामी तथागत बुद्ध के समकालीन थे, किन्तु उनसे बड़े थे। ईसाई शब्द ईसामसीह के बाद आज से 2000 वर्ष पूर्व प्रचलन में आया और ईसाई मत शुरू हुआ। इस्लाम-मुसलमान मजहब हजरत मोहम्मद द्वारा आज से लगभग 1400 वर्ष पूर्व चलाया गया। इसी प्रकार अन्य मत-मजहब-सम्प्रदाय की बात है। चाहे हिन्दू, ईसाई, यहूदी, पारसी, जैन, बौद्ध, मुसलमान आदि हों चाहे अन्य दुनिया के नाम-अनाम मत-मजहब-सम्प्रदाय हों सबका उदय-

प्रचलन किसी देश-काल खण्ड में ही हुआ है। इनमें से कोई शाश्वत नहीं है, जबकि धर्म शाश्वत है। अतः हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी, पारसी, जैन, बौद्ध आदि धर्म नहीं किन्तु समाज, मत, मजहब, सम्प्रदाय हैं। इसीलिए कबीर साहेब ने अपने को न हिन्दू कहा न मुसलमान और न अन्य, क्योंकि वे शाश्वत धर्म के अनुयायी थे।

यह पहले कहा जा चुका है कि जिसे माने बिना मनुष्य सुख-शांति-पूर्वक जीवन जी सकता है और अपने परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है, वह धर्म नहीं, किन्तु मत-मजहब-सम्प्रदाय है, किन्तु जिसका पालन-आचरण किये बिना, दुनिया के किसी कोने का आदमी सुख-शांति-पूर्वक जीवन नहीं जी सकता और अपने परम लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता है और जो सब देश के मनुष्यों के लिए समान रूप से लागू होता है वह धर्म है।

विभिन्न मत-मजहब-सम्प्रदाय के अनुयायियों ने भले ही सत्य-तत्त्व के अनेक नाम रखकर उसकी अपने-अपने ढंग से अलग-अलग व्याख्या की हो और उसे काट-काटकर देखने की चेष्टा की हो, परन्तु जो मूल धर्म है उसमें किसी के लिए कोई अन्तर नहीं है। आगे इसी धर्म पर विचार करेंगे कि वह क्या है।

‘धर्म’ शब्द ‘धृ’ धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है—धारण करना। जो विश्व सत्ता को, मानव समाज को धारण करे, वह धर्म है। विश्व सत्ता को धारण करने वाला उसके अपने नियम, तत्त्वों के गुण-धर्म हैं, जो शाश्वत हैं और जिसे ऋग्वेद में ऋत कहा गया है। मानव-समाज को धारण करने वाला धर्म नैतिकता और सदाचार के नियम हैं। अतः विश्वसत्ता के नियम और सद्गुण-सदाचार ही सच्चा धर्म है। इस धर्म की व्युत्पत्ति और व्याख्या विद्वान जन इस प्रकार करते हैं—

*ध्रियते सुखप्राप्तये सेव्यते स धर्मः ।
पक्षपातरहितो न्यायः सत्याचारो वा ॥*

अर्थात्—सुख-प्राप्ति के लिए जिसको धारण तथा सेवन किया जाये वह धर्म है या पक्षपातरहित न्याय तथा सत्याचरण ही धर्म है।

श्रुयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वाचैव धार्यताम् ।

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥

(पंचतंत्र, काकोलूकीयम् 103)

अर्थात्—धर्म के रहस्य को सुनो और सुनकर धारण करो। धर्म का रहस्य यह है कि जो अपनी आत्मा के प्रतिकूल हो अर्थात् जो हम अपने लिए नहीं चाहते वह दूसरों के साथ न करें।

हर आदमी सोच-समझ सकता है कि मैं अपने लिए क्या-क्या नहीं चाहता। कोई आदमी अपने लिए दुख, पीड़ा, घाटा, अपमान, गाली, कटुवचन, निंदा, वैर-विरोध, ईर्ष्या, द्वेष आदि नहीं चाहता, चाहे वह किसी मत-मजहब-सम्प्रदाय का मानने वाला, किसी देवी-देवता, भगवान, खुदा, गॉड की पूजा करने वाला और किसी भी प्रकार का कर्मकाण्ड करने वाला क्यों न हो। इसके विपरीत हर आदमी अपने लिए सुख, शांति, लाभ, सम्मान, प्रिय-मृदु वाणी, प्रशंसा, प्रेम, समता-एकता का व्यवहार चाहता है चाहे वह किसी देश का रहने वाला और किसी भाषा का बोलने वाला हो। जो अपने लिए नहीं चाहते वह दूसरों के साथ न करना किन्तु दूसरों के साथ वही करना जो स्वयं अपने लिए चाहते हैं, बस यही धर्म है। कबीर साहेब इसी धर्म को मानने वाले थे और इसी धर्म की सीख वे जीवनपर्यन्त देते रहे। यही धर्म सबके लिए सुख-शांति का रास्ता है। इसको छोड़कर कोई सुख-शांति पूर्वक जीवन तो जी ही नहीं सकता, किन्तु सबके लिए दुख-अशांति ही पैदा करेगा, चाहे वह किसी भी मत-मजहब का मानने वाला हो।

इसी धर्म की व्याख्या करते हुए मनुस्मृति में कहा गया है—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।

धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

अर्थात्—धैर्य, क्षमा, मनोनिग्रह, चोरी न करना, अन्तर-बाहर की पवित्रता, इन्द्रियों को संयमित रखना, शुद्ध बुद्धि, विद्या अर्थात् विवेक, सत्य (ज्ञान, आचरण, वाणी, भावना सत्यतापूर्ण होना) और क्रोध न करना— धर्म के ये दस लक्षण हैं।

मनुस्मृति भले ही हिन्दुओं की पुस्तक है, परन्तु ऊपर जो इसमें धर्म के लक्षण बताये गये हैं वे मानव मात्र के लिए आवश्यक हैं चाहे वे किसी मत-मजहब के अनुयायी हों। इनका त्याग करके कोई भी व्यक्ति न तो सुख-शांति-पूर्वक जीवन जी सकता है और न आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है, चाहे वह किसी प्रकार का पूजा-पाठ कर्मकाण्ड करने वाला क्यों न हो।

ध्यान रहे, मन्दिर-मस्जिद, कोई धार्मिक उपासना स्थल, पूजा-पाठ, नाम-मंत्र जप, संध्या-नमाज, कर्मकाण्ड आदि धर्म नहीं हैं। किन्तु धर्म के आनुषंगिक एवं पूर्णतः बाह्य अंग हैं। यह सब यदि शुद्ध भावना से किये जायें तो मानसिक एकाग्रता-प्रसन्नता-सात्त्विक भावना में एक हद तक सहयोगी हो सकते हैं, किन्तु जब इन पर ही अधिक जोर दिया जाने लगता है तब वास्तविक धर्म तो छूट जाता है और धर्म के नाम पर भटकाव शुरू हो जाता है और आदमी सच्चे धर्म से दूर जाकर अंधविश्वास, भ्रम-कल्पना, मिथ्या महिमा, पाप काटने के लिए किये जाने वाले कर्मकाण्ड के दलदल में ऐसा धंस जाता है कि वहां से निकलना मुश्किल हो जाता है।

धर्म का सम्बन्ध न किसी व्यक्ति विशेष से है न धर्मग्रन्थ विशेष से और न मत-मजहब, पूजा-पाठ विशेष से है, किन्तु सच्चा धर्म इन सबसे सर्वथा निरपेक्ष सार्वभौमिक और सार्वकालिक है। इसलिए कोई अपनी साम्प्रदायिक भावनाओं पर चाहे कितना ही जोर क्यों न दे और उन्हें न मानने वालों को चाहे कितनी ही गाली क्यों न दे किन्तु जब सार्वभौमिक, सार्वकालिक सच्चे धर्म की व्याख्या करने की बात आती है तब उसे अपनी साम्प्रदायिक भावनाओं से ऊपर उठकर सत्य की धरातल पर ही आना पड़ता है। उदाहरण के लिए गोस्वामी तुलसीदास जी को लिया जा सकता है। उन्होंने अपने रामचरितमानस में दशरथ-पुत्र रामचन्द्र को अनन्त ब्रह्माण्ड नायक परब्रह्म परमात्मा न मानने वालों और उनकी पूजा-उपासना न करने वालों को पानी पी-पीकर गाली दिया है और उन्हें सूअर, कुत्ता, गधा, बिना सींग-पूंछ का पशु तक कह डाला है, किन्तु जब सच्चे धर्म की बात कहना हुआ तब

उन्होंने दशरथ-पुत्र राम को परमात्मा मानना और उनका भजन करना नहीं बताया, किन्तु सार्वभौमिक-सार्वकालिक तथ्य ही बताया, देखें रामचरित मानस में धर्म का वर्णन—

*परहित सरिस धरम नहिं भाई।
परपीड़ा सम नहिं अधमाई॥
परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा।
पर निंदा सम अध न गरींसा॥
धर्म न दूसर सत्य समाना।
आगम निगम पुराण बखाना॥*

यहां गोस्वामी तुलसीदास जी राम नाम का जप करना धर्म नहीं बताते क्योंकि उसे कुछ लोग ही मान सकते हैं, वह एक सम्प्रदाय विशेष की बात है। किन्तु दूसरों का हित करना, अहिंसा एवं सत्य को परम धर्म कहते हैं और यह भी कहते हैं कि इनके समान कोई धर्म नहीं है, साथ ही दूसरों को पीड़ा देना तथा दूसरों की निंदा करने को अधर्म कहते हैं जो कि सार्वभौमिक सत्य है।

वे सारे क्रिया-कलाप जो हमारे व्यावहारिक जीवन को सुखद-सामंजस्य पूर्ण बनाने के साथ-साथ आत्मिकशांति, आत्मतृप्ति, आत्मसंतुष्टि की ओर ले जाते हैं और भौतिक विकास के साथ आध्यात्मिक विकास में सहायक हैं, पूर्ण दुख निवृत्ति प्रदान करते हैं—धर्म है। इसी धर्म का लक्षण बताते हुए महर्षि कणाद वैशेषिक दर्शन में कहते हैं—

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धि स धर्मः।

अर्थात् जिससे लौकिक उन्नति और आत्मकल्याण की प्राप्ति हो वह धर्म है।

ऊपर धर्म के जितने लक्षण बताये गये हैं—जो अपने को पसंद न हो, अर्थात् जो हम अपने लिए नहीं चाहते वह दूसरों के साथ न करना, पक्षपात रहित न्याय, धैर्य, क्षमा, चोरी न करना, मनोनिग्रह, अंतर-बाहर की पवित्रता, इन्द्रिय संयम, शुद्ध बुद्धि, सत्याचरण, अक्रोध, दूसरों का हित करना, अहिंसा आदि यही सच्चा धर्म है। क्या इस धर्म में हिन्दू,

मुसलमान, ईसाई, यहूदी, पारसी, बौद्ध-जैन, ब्राह्मण, शूद्र, अवर्ण-सवर्ण, देशी-विदेशी का कोई भेदभाव है? क्या इस धर्म का उल्लंघन कर कोई सुखी जीवन जी सकता है और जीवन के अंतिम लक्ष्य, जीवनोद्देश्य को प्राप्त कर सकता है? उत्तर होगा—नहीं। इसके लिए हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन होने-न होने की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है तो सिर्फ मनुष्य होने की, क्योंकि यह मानव धर्म है और सद्गुरु कबीर इसी की सीख देते हैं। इसीलिए कबीर साहेब न हिन्दू होने की बात कहते हैं और न मुसलमान होने की, किन्तु वे सिर्फ मनुष्य होने को कहते हैं। वे न हिन्दू धर्म की बात कहते हैं न मुसलमान धर्म की और न किसी अन्य धर्म की किन्तु वे केवल मनुष्य धर्म की बात कहते हैं। कबीर न हिन्दू थे और न मुसलमान किन्तु वे शुद्ध मनुष्य थे। अतः उनका धर्म न हिन्दू धर्म है और न मुसलमान धर्म किन्तु उनका धर्म मानव धर्म है। पूरी कबीर वाणी में सारे साम्प्रदायिक आग्रहों, पक्षपात, भेदभाव, संकुचितताओं से ऊपर उठकर सच्चे मानव धर्म का वर्णन है। कबीर सच्चे धार्मिक थे। कबीर की वाणी और विचार में सच्चा धर्म समाहित है। कबीर साहेब ने सच्चे धर्म, कहना चाहिए शुद्ध धर्म, निरपेक्ष धर्म का उपदेश दिया है।

अब प्रश्न यह होता है कि यदि कबीर के वाणी-विचारों में सच्चा धर्म समाहित है और कबीर ने सच्चे धर्म का उपदेश किया है तो कबीर के विचारों को कबीर धर्म क्यों नहीं कहा गया, कबीर पंथ क्यों कहा गया—जैसे बुद्ध के विचारों को बौद्ध धर्म, महावीर स्वामी के विचारों को जैन धर्म, हजरत मुहम्मद के विचारों को इस्लाम धर्म कहा गया?

पहली बात तो यह कि बौद्ध, जैन, इस्लाम-मुसलमान आदि धर्म नहीं किन्तु मत-मजहब-सम्प्रदाय हैं, जिस पर पूर्व में चर्चा की जा चुकी है। इसी प्रकार हिन्दू भी धर्म नहीं है किन्तु समाज है जिसमें अनेक सम्प्रदाय हैं। दूसरी बात अच्छे से अच्छे विचार को भी

जब धर्म की संज्ञा दे दी जाती है तब उसमें एक प्रकार की संकुचितता आ जाती है और वह एक सीमा में बंधकर रह जाता है और वह एक वर्ग-समाज के लोगों की ही वस्तु बनकर रह जाती है। तीसरी बात जब किसी विचार को धर्म मान लिया जाता है जो कि हकीकत में मत-मजहब-सम्प्रदाय है तब धीरे-धीरे उसमें और उसके अनुयायियों में एक प्रकार की कट्टरता आने लग जाती है और यह कहा जाने लगता है कि हमारा ही धर्म (मत-मजहब-सम्प्रदाय) एकमात्र स्वर्ग और मोक्ष का रास्ता है, शेष धर्म (मत-मजहब-सम्प्रदाय) नरक के रास्ते हैं। यदि किसी को मुक्ति मिल सकती है, ईश्वर-ब्रह्म साक्षात्कार हो सकता है तो हमारे धर्म द्वारा ही, अन्य धर्म द्वारा यह सम्भव ही नहीं है। हमारे धर्म के अनुयायी ही सच्चे आस्तिक और दीनदार हैं, बाकी धर्मों के अनुयायी नास्तिक, काफिर और बेदीन हैं। इस भावना को लेकर विभिन्न धर्मों के अनुयायी एक दूसरे के विरुद्ध ईर्ष्या-द्वेष-नफरत की आग उगलते रहते हैं। इसी खतरे को देखकर कबीर साहेब ने या कबीर साहेब के तत्काल बाद के उनके अनुयायियों ने कबीर विचारों को धर्म न कहकर पंथ कहा। पंथ (मार्ग-रास्ता) सबके लिए होता है किन्तु मत-मजहब-सम्प्रदाय सीमित लोगों के लिए होते हैं।

पंथ और मत-मजहब-सम्प्रदाय अलग-अलग होते हैं, किन्तु सच्चा धर्म और पंथ अलग-अलग नहीं, अपितु एक ही हैं। जो पंथ है वही धर्म है और जो धर्म है वही पंथ है। धर्म का वर्णन पहले किया जा चुका है और देखा जा चुका है कि वह मानव मात्र के लिए समान उपयोगी है, उसमें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी, बौद्ध, जैन आदि के लिए कोई भेदभाव-पक्षपात नहीं है। अब यह समझना है कि पंथ क्या है। पंथ का अर्थ है—मार्ग, रास्ता, जिस पर चलकर अपने उद्देश्य, गंतव्य तक पहुंचा जा सके। अब प्रश्न यह होता है कि किस पंथ पर चलकर मनुष्य अपने उद्देश्य तक पहुंच सकता है। इस प्रश्न का उत्तर देना सरल नहीं है, किन्तु यदि हम सारे आग्रह, दुराग्रह, पक्षपात और

साम्प्रदायिक संकुचितताओं से ऊपर उठकर उत्तर दूँटना चाहें तो उत्तर मिल सकता है। महाभारत में भी यक्ष ने युधिष्ठिर से यही प्रश्न पूछा है कि पंथ क्या है? इसका जो उत्तर युधिष्ठिर ने दिया है वह सर्वमान्य उत्तर हो सकता है यदि पक्षपातरहित विनम्र होकर स्वीकार करें तो। युधिष्ठिर कहते हैं—

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयोविभिन्नाः नैकोऽऋषिर्यस्य मतः प्रमाणम् ।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम् महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥

अर्थात्—तर्क की कोई प्रतिष्ठा (सीमा) नहीं है, श्रुतियां अनेक हैं, ऋषि एक नहीं है जिसके मत को प्रमाण मान लिया जाये, धर्म का तत्त्व (सार) गुफा में छिपा (ढंका) हुआ है, इसलिए विवेकवान जिस रास्ते पर चले हैं वही पंथ है।

यहां महाजन का अर्थ व्यक्ति विशेष नहीं है क्योंकि पहले ही कह दिया गया है कि ऋषि-महापुरुष एक नहीं है, अनेक हैं। इसलिए महाजन का अर्थ व्यक्ति विशेष नहीं अपितु विवेकी है और विवेकी वह है जिसके ज्ञान और आचरण दोनों शुद्ध हों, जिसकी कथनी-करनी-रहनी में एकता हो, जो न किसी की बात को आंख मूंदकर मानता हो और न अपनी बातों को आंख मूंदकर मानने की राय देता हो। ऐसा विवेकी पुरुष किसी का भी पक्षपात नहीं करता। वह सब जगह से मधुकरवत सार ग्रहण करता रहता है। यही बात सद्गुरु कबीर कहते हैं—

साधु ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय ।
सार-सार को गहि रहे, थोथा देई उड़ाय ॥
सब काहू का लीजिये, साँचा शब्द निहार ।
पक्षपात न कीजिये, कहैं कबीर विचार ॥

महाजन का अर्थ है विवेकी और विवेकी पुरुष न किसी को अपना मानता है और न पराया किन्तु वह सबका हितचिंतक होता है। वह दूसरों के दुख को देखकर दुखी हो जाता है और अपने ढंग से उसे दूर करने का प्रयास करता है। कबीर साहेब यही कहते हैं—

कबीर खड़ा बाजार में, सबकी मांगे खैर ।
न काहू से दोस्ती, न काहू से बैर ॥
मैं रोवों यह जगत को, मोंको रोवे न कोय ।
मोंको रोवे सो जना, जो शब्द विवेकी होय ॥

कबीर का पंथ महाजन-विवेकी का पंथ है। इसमें किसी के लिए पक्षपात नहीं है। चाहे कोई किसी मत-मजहब-सम्प्रदाय का अनुयायी हो और चाहे किसी वर्ण-वर्ग-जाति का व्यक्ति हो हर कोई इसमें चल सकता है। यह सबके लिए सहज सुलभ पंथ है।

जिसका ज्ञान और आचरण शुद्ध हो वह विवेकी है, महाजन है। जिस ज्ञान में किसी प्रकार का भ्रम, कल्पना, अंधविश्वास, चमत्कार, मिथ्या महिमा, पाप काटने के सस्ते नुस्खे न हों वह ज्ञान शुद्ध ज्ञान है और कबीर के विचारों में इन सब के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। अतः कबीर का ज्ञान शुद्ध ज्ञान है। कबीर अपनी कथनी-करनी-रहनी में सिर से पैर तक एक समान हैं। उन्होंने जैसा कहा वैसा जिया और जैसा जिया वैसा कहा, इसीलिए वे सुर, नर, मुनि सबको चुनौती देते हुए कह सके थे—

सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ी,
ओढ़ के मैली कीनी चदरिया ।
दास कबीर जतन से ओढ़ी,
ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया ॥

कबीर सचमुच में अपने ज्ञान और आचरण में, कथनी-करनी-रहनी की एकता में एक समान होने से महाजन हैं और उनका पंथ महाजन का पंथ है, जो सबके लिए सहज सुलभ है।

ऋग्वेद के ऋषि कहते हैं—

स्वस्तिपंथामनुचरेम् सूर्यचन्द्रमसाविव ।

अर्थात्—जैसे सूर्य और चन्द्रमा एक ही आकाश में बिना झगड़ा किये चलते हैं वैसे हम सब प्रेम, समता-एकता का भाव रखकर एक दूसरे का सहयोग करते हुए कल्याण मार्ग में चलें।

पूरी दुनिया के मनुष्यों के लिए धैर्य, क्षमा, संतोष, संयम, शम, दम, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, अहिंसा,

प्रेम, करुणा, दया, विवेक, विचार आदि ही कल्याण का मार्ग है। इनको छोड़कर कल्याण का कोई और मार्ग है ही नहीं। इसी के लिए कबीर ने कहा है—हिन्दू तुरुक की एक राह है, सतगुरु सोई लखाई। जो सबके लिए कल्याण का मार्ग, कल्याण पथ है, जिस मार्ग पर चलकर मानव मात्र परम शांति, परमानन्द, जीवनोद्देश्य को प्राप्त कर सके वही तो धर्म है। इसके अतिरिक्त धर्म और क्या है! इसके अतिरिक्त जो होगा वह अधर्म होगा। अतः धर्म और पंथ दो नहीं एक ही है। दोनों को अलग समझना भूल है। अतः कबीर का पंथ धर्म ही है, जो मानव मात्र का पंथ और धर्म है। यह अलग बात है कि इस पर कौन कितना चल पाता है। जो इस पर जितना चलेगा वह उतनी शांति को पायेगा और अपने गंतव्य, जीवनोद्देश्य को प्राप्त कर सकेगा।

तथागत बुद्ध ने जो दुखनिवृत्ति की ओर ले जाने वाले आष्टांगिक मार्ग का निरूपण किया है—सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वचन, सम्यक कर्मान्त, सम्यक आजीव, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति, सम्यक समाधि, यह मार्ग हर उस मनुष्य के लिए है जो दुखों से पूर्ण छुटकारा पाकर अनंत शांति में जीना चाहता है और यही सच्चा धर्म है। इस धर्म की चर्चा कबीर वाणी में पदे-पदे है। इसी धर्म के लिए कबीर आजीवन जूझते रहे। यद्यपि बुद्ध ने अपने विचारों को धर्म न कहकर मार्ग कहा, परन्तु यह धर्म के अतिरिक्त और क्या है! यही तो सच्चा धर्म है और इसका अनुसरण कर कोई भी मनुष्य लौकिक जीवन को सुन्दर ढंग से जीते हुए निर्वाण प्राप्त कर सकता है, जिसे महर्षि कणाद ने कहा है—यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धि स धर्मः अर्थात् जिससे लौकिक उन्नति और आत्मिक शांति की प्राप्ति हो वह धर्म है।

कबीर साहेब एक ऐसी धरातल तैयार करते हैं जहां एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से मनुष्य होकर मिल सके और प्रेम, सेवा, समता का व्यवहार करते हुए मनुष्य बनकर जी सके। कबीर वह स्वतंत्र परिदा है जिसे

किसी मत-मजहब-सम्प्रदाय के पिंजड़े में बंद नहीं किया जा सकता। वे सबके पास गये, सबको निकट से देखे-भाले, जांचे-परखे, सबसे सीखे-समझे, परन्तु किसी एक का होकर नहीं रहे। उन्होंने सबसे सार ग्रहण किया, परन्तु सबको उनकी गलतियों के लिए फटकारा। उन्होंने देखा कि सब अपने मत-मजहब-सम्प्रदाय को स्वर्ग-मोक्ष और ईश्वर प्राप्ति का एकमात्र रास्ता मानकर उसके अहंकार में चूर हैं, सबको अपने धार्मिक एवं सच्चा ईश्वर-भक्त होने का घमण्ड है, किन्तु सब अपने करुणानिधान और रहमवान ईश्वर-खुदा को खुश करने के लिए धर्म और ईश्वर-भक्ति के नाम पर बलि और कुर्बानी कहकर मासूम-निरीह प्राणियों की हत्या कर रहे हैं। इसीलिए उनको कहना पड़ा—‘सन्तो राह दूनों हम दीठा’ अर्थात् हमने हिन्दू और मुसलमान दोनों के रास्ते को देख लिया है कि दोनों के यहां हिंसा-हत्या और एक-दूसरे के प्रति नफरत की आग लगी है। जहां हिंसा-हत्या और नफरत हैं वहां धर्म कहां है, वहां तो प्रत्यक्ष अधर्म है। हिंसा-हत्या, नफरत की आग में जलने-जलाने वाले प्रेम का, शांति का, स्वर्ग का, मोक्ष का, ईश-मिलन का मार्ग कैसे पा सकते हैं। ये तो अपने मार्ग से भटककर कुमार्ग में जा रहे हैं। अतः कबीर को फिर कहना पड़ा—‘अरे इन दोऊ राह न पायी।’ अर्थात् हिन्दू और मुसलमान दोनों ने सत्य का, शांति का मार्ग नहीं पाया।

इतना साफ कहने वाले कबीर अपने को हिन्दू या मुसलमान कैसे कह सकते हैं। अतः उनका धर्म न हिन्दू धर्म है और न मुसलमान धर्म है किन्तु उनका धर्म मानव धर्म है। कबीर का पंथ, कबीर का मार्ग प्रेम का, शांति का, कल्याण का मार्ग है और जिस पंथ पर चलकर मनुष्य शांति, सुख, आत्मसंतुष्टि, आत्मतृप्ति, जीवनोद्देश्य प्राप्त कर सकता है वही धर्म है, सच्चा धर्म। अतः कबीर का पंथ ही कबीर का धर्म है और कबीर का धर्म ही कबीर का पंथ है और यही मानव मात्र के लिए धर्म एवं पंथ है।

—धर्मेन्द्र दास

अभिन्न कबीर

लेखक—श्री सुकन पासवान 'प्रज्ञाचक्षु'

सब से भिन्न कबीर को अभिन्न लिख रहा हूँ। उल्टबांसी के एरेस्टोक्रेट कबीर के लिए कभी-कभी उल्टबांसी का प्रयोग अपरिहार्य हो जाता है। कबीर हिंदू-मुस्लिम, सिक्ख-ईसाई, जैन-बौद्ध, सूफी-सनातनी, सबसे भिन्न हैं। वे जाति, वर्ण, लिंग, गोत्र, वंश-कुल की परम्परा मानने वालों से भी भिन्नता रखते हैं। शोषण-संहार, हिंसा-हवस, घृणा-विद्वेष भाव से ग्रसित मानसिकता वालों से भी पृथकता रखते हैं और तमाम तरह के विभेदवादियों तथा षड्यंत्रकारियों से भी दूर रहते हैं। फिर कबीर अभिन्न कैसे हैं? कबीर बाह्यतः सबसे भिन्न जरूर दिखते हैं लेकिन आभ्यंतरिक तौर पर वे सभी धर्मों की अभिन्नता, सभी मानवों में अभिन्नता, सभी वर्णों में अभिन्नता, सभी रंगों में अभिन्नता, सभी प्राणियों में अभिन्नता, यहां तक कि सब में सर्वतोभावेन अभिन्नता एवं अन्योन्याश्रयितता की वकालत करते हैं। अपनी मान्यता के समर्थन में उन्होंने क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर के गुणधर्मों, विभिन्न रंग-वर्ण में बंटे मानवों की जीवनचर्या तथा देश-परदेश की पृथकता-भिन्नता के बावजूद वहां के तमाम निवासियों की नैसर्गिकता में समरूपता को रेखांकित करते हुए प्रतिपादित किया कि भिन्नता तो हमारी दृष्टि का दोष है। वास्तव में सब हैं तो अभिन्न।

कहा—“आकाश के नीचे रहने वाले तो अपने को भिन्न-भिन्न देश-परदेश का कहते हैं। लेकिन आकाश अलग-अलग कहां है। धरती पर तो सैकड़ों देश हैं लेकिन धरती तो एक ही है। जलाशयों के नाम तो अलग-अलग हैं लेकिन सभी के जल का गुणधर्म तो एक है। आग का स्थान तो अलग-अलग है लेकिन कोई शीतलतावर्द्धक भी है क्या और वायु तो सर्वत्र व्याप्त है लेकिन उसके कुल-वंश की पहचान बताई जा सकती है क्या?” गणना कराने वालों ने हजारों जाति के नाम गिना दिये लेकिन इस नामकरण का आधार क्या है? रहने को तो, हम यहां-वहां कहीं भी रह लेते हैं लेकिन इसके कारण हम अपनी नैसर्गिक

आवश्यकताओं को स्थान परिवर्तन के कारण भूल जाते हैं क्या? भाषा भी भिन्न-भिन्न हैं लेकिन एक ही नाम को विभिन्न भाषाओं में लिखने पर उसका अर्थ बदल जाता है क्या? फिर विभिन्न नामों द्वारा पुकारे जाने वाले एक भगवान में अंतर कैसे है? एक ही भगवान के द्वारा सृजित मानवों में जाति विभाजन का आधार क्या है? एक ही आकृति-प्रकृति का आदमी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अंग्रेज, जैन, ईसाई, कसाई कैसे हो गया? जन्म और मृत्यु की प्रक्रिया एक है तो जन्म पर आधारित श्रेष्ठता-निम्नता का औचित्य क्या है?

कबीर मानव को अभिन्नगोत्रीय मानते हैं। मानव-मानव में भेद उत्पन्न करने वाले बाह्याडंबरों, मजहबों, रूढ़ियों और अंधविश्वासों के प्रति जैसा कठोर रूख कबीर ने अपनाया वैसा किसी और साधु-संत या भक्त-मुक्त ने नहीं अपनाया था। उनकी मान्यता थी कि मानव मात्र की उत्पत्ति एक ही ज्योति से हुई है। प्रकृतितः भी सभी एक समान हैं। फिर भिन्नता कहां है?

एक बूंद एक मल-मूत्र एक चाम एक गूदा।

एक जोति तैं सब ऊपजा कौन ब्राह्मण कौन सूदा॥

कबीर के जन्म और जाति जानने वालों की कमी नहीं थी। वे बार-बार कबीर की जाति जानने के लिए झगड़ते थे। लेकिन कबीर या तो इस विषय पर चुप रहते थे या ऐसी रहस्यमय बात कह देते थे ताकि सब खीझ उठते थे। हारकर अपने-अपने ढंग से मंतव्य प्रतिपादित करते थे। कबीर वैसों के मर्म पर मलहम लगाने के बदले शब्दबेधी बाण छोड़ देते थे—

“एकै पवन एक ही पानी, करी रसोई न्यारी जानी।

माटी सूं माटी लै पोती, लागी कहौ कहां घूं छोती।

धरतीलीपी पवितर कीनी, छोति उपाय लीक विधि दीन्हीं।

याका हमसूं कहौ विचारा, क्यों भव तिरिहौ इकि आचारा॥”

माटी से माटी को पवित्र करने की कसरत, पानी से बने भोजन को पवित्र-अपवित्र कहने के अंधविश्वास

तथा समान दिनचर्या का पालन करते हुए वर्णाश्रम विचार करने वाले ज्ञानार्थियों को कबीर ने फटकारा। सबकी अभिन्नता को स्पष्ट किया और निरर्थक भिन्नता को मिटाने की सलाह दी। कबीर भिन्नता को संकीर्णता मानते थे। वे अभिन्नता को मर्यादा कहते थे। समग्र सामाजिक अशोभन तथा विद्रूपता को मिटाकर समभावी समाज की स्थापना के हिमायती थे। वे ढोंग में विश्वास नहीं करते थे। गुणधर्म की पहचान करने को कहते थे और अन्धविश्वास को त्यागने का तरीका बताते थे।

कबीर केवल हिंदू-मुस्लिम की पृथकता को रेखांकित नहीं करते थे। वे तो इनकी अभिन्नता को प्रकट करना चाहते हैं। कबीर मानव-मानव में अभिन्नता इसलिए बतलाते हैं कि सबकी देह तो देखने में भिन्न-भिन्न है, लेकिन सब में अवस्थित देही तो एक ही है। बाहर तो रंगों का विभाजन तथा बहार है लेकिन अंदर तो एक ही रंग और वर्ण का बंधु विराजमान है। अस्तु बाहरी विभेद व्यर्थ तथा बरबादी के कारण हैं। उनका यह कहना कि—

“जो तू बामन-बामनी जाया, आन बाट ते काहे न आया।

जो तू तुरक तुरकनी जाया, भीतर ही खतना क्यों न कराया॥”

विभेद रेखांकित करने के लिए नहीं है। यह भिन्नता का परिचायक भी नहीं है। यह तो अभिन्नता की आत्मा की व्याख्या है। यदि ब्राह्मण और तुर्क में भिन्नता होती तो इनकी जन्म प्रक्रिया में भी भिन्नता होनी चाहिए थी। लेकिन आदमी-आदमी के जन्म में तो कोई भिन्नता नहीं होती। सब समय तक गर्भ में रहते हैं। एक ही प्रक्रिया से जन्म ग्रहण करते हैं। एक ही प्रकृति से जीवनयापन करते हैं। फिर भिन्नता कहां है?

कबीर गड़रिया हैं। वे भेड़ों की घेराबंदी करते हैं। घेर-घेर कर बिखरे तथा बिछुड़ों को एकत्रित करना चाहते हैं। भटके हुए को भी साथ करना चाहते हैं। अनजानों की भी जान-पहचान कराना चाहते हैं। एक वृत्त में सबको लाकर समगोत्रीय बनाना चाहते हैं। साफ-साफ समझाते हैं कि उत्तर-दक्षिण, पूरब-पश्चिम

में रहने वालों पर अलग-अलग नहीं बल्कि एक ही सूर्य का प्रकाश पड़ता है। सब एक ही वायु को प्राण रूप में सोखते हैं। भिन्नता भ्रम है।

“जो खुदाई मसीति बसतु है और मुलुक किस फेरा।
तीरथ-मूरति राम निवासा दुहें में किनहुं न हेरा।
पूरब दिसा हरी का बासा पछिम अलह मुकामा।
दिल ही खोज दिलेदिल भीतर इहों राम रहिमाना।
जेते औरत मरदां कहिए सब में रूप तिहारा।
कबीरा पंगुरा अलह राम का हरि गुरु पीर हमारा।”

कबीर इसलिए बार-बार चेतावनी देते हैं कि भ्रम में मत भूलो, उस परमात्मा स्वरूप को पहचानो जो प्रत्येक जीव में समभाव से व्याप्त है। सृष्टि के जीव मिट्टी के बने बरतन की तरह बाह्य आकार में भिन्न हैं, किंतु उनका निर्माण एक ही मिट्टी तत्त्व से हुआ है। इस तरह अंतरंग में सब एक हैं। ज्ञान और भक्ति, बुद्धि और हृदय, तर्क और विश्वास, तत्त्व और निरूपण, आस्था और आयाम सभी दृष्टि से सब एक हैं। दिशा के आधार पर और देश के नाम पर परमात्मा का नामकरण और विभाजन मूर्खता है। जब जीवात्मा एक है तो जीव भी एक ही है, अभिन्न ही है।

कबीर लुंचित, मुंडित, मौनी, जटाधर, पंडित, गुणी, शूर, कवि, दाता सभी नामधारी जीवों को माया का प्रपंचकर्ता कहते हैं। केशों को नोचने से केशव नहीं मिलते, बाल मुड़ा लेने से सभी बौद्ध नहीं हो जाते, मौन धारण करने से मन का मैल साफ नहीं होता, कुरान का भावानुवाद करने से व्यक्ति परमतत्त्व का ज्ञान नहीं हो जाता, नट की रस्सी पर चलने वाला शूर शूर नहीं होता, मात्र कविता लिख देने से कोई करतार का अवतार नहीं हो जाता और मान-बड़ाई के लिए संसार की ही वस्तु को संसारी को दे देने से कोई दाता नहीं हो सकता। नोचकर फेंकना ही है तो कषाय-कल्मषों को फेंकना चाहिए, मुंडित होना ही है तो प्रकृति की चतुरंगिनी सेना (मोह, माया, क्रोध, लोभ) से मुक्त होना चाहिए, मौनी बनना है तो मन को मारने की कला सीखनी चाहिए, जटाधर बनना है तो जड़ता का परित्याग करना चाहिए, पंडित कहलाना है तो परमात्मा

को जानने का व्यापार करना चाहिए, गुणी कहलाना है तो गुण के खान गुणातीत से साक्षात्कार कराने का जतन बताना चाहिए, शूर की कोटि में गण्य होना है तो प्रकृति से उपराम होने की कला सीखनी चाहिए, कवि कहलाना है तो करतार के मर्म का गुणगान करना चाहिए और दाता कहलाना है तो सभी तरह की विभेद बुद्धि का तत्क्षण दान कर देना चाहिए। कबीर यह सबकुछ मात्र एक उद्देश्य की प्राप्ति करने के लिए कहते हैं—वह उद्देश्य है एकत्व को प्राप्त करना। जब एक को प्राप्त करने का उद्यम करेंगे तो सब प्राप्त होगा, जब सब को प्राप्त करने का नाटक करेंगे तो कुछ भी प्राप्त नहीं होगा।

कबीर इस्लाम एवं अन्य विदेशी प्रभावों से विभाजित भारतीय समाज में समत्व की स्थापना कराना चाहते थे। लेकिन उनका यह प्रयास राजनैतिक नहीं था। वे नैसर्गिकता के नियमों के तहत इस अकारण विभाजन को मिटाना चाहते थे। वे हिंदू-मुस्लिम दोनों को विभाजन का चरखा चलाने से मना करते थे। प्रथमतः इसलिए कि यह नैसर्गिक नियम का उल्लंघन है और द्वितीयतः इससे स्व का ज्ञान होने के बदले पर के भाव को प्राण मिलेगा। मानव अपने आविर्भाव के लक्ष्य को भूल जायेगा और नरक (कष्ट) का भागी बनेगा। कबीर मानवतावादी तथा आध्यात्मिक व्यक्ति थे। वे दोनों ही दृष्टिकोण से मानवीय अभिन्नता को प्रतिपादित करना चाहते थे। इस तरह कबीर वस्तुतः आदर्शवादी समाजवादी थे। कबीर पूजा का नहीं, पूजा के नाम पर किए जाने वाले प्रपंच तथा अज्ञान व्यवहार का विरोध करते हैं। वह कहते हैं—काजी (विचारक) वही है जो शरीर में स्थित चैतन्य का चिंतन करता है। वह ईश्वर के प्रेम रूपी तेल में ज्ञान की बत्ती जलाता है। जो प्राण रहते हुए परम-ज्योति को पहचान लेता है, वही सच्चा काजी है। मुल्ला खुदा की आवाज के नाम पर बांग देता है और मुसल्ला फैलाकर नमाज पढ़ने बैठ जाता है। परंतु जो अपने शरीर के भीतर नमाज पढ़ता है अर्थात् शरीर में व्याप्त परम ज्योति की आराधना करता है, वही मुल्ला सर्वत्र गरजता है अर्थात् हृदय में

भगवान की आवाज सुनकर निर्भय बना हुआ घुमता है। शेख वही है जो सहज अवस्था को प्राप्त करता है, चंद्र और सूर्य (इड़ा, पिंगला) नाड़ियों को समन्वित करके सुषुम्ना में समाहित करा देता है तथा प्राण वायु को रोक लेता है। वह अधोवर्ती और ऊर्ध्ववर्ती कमलों के बीच स्थित अनाहत (हृदय) चक्र में स्थित भगवान के समीप अपने आप को अवस्थित करता है। ऐसा ही शेख वास्तव में तीनों लोकों का प्रिय बनता है। जंगम साधु वही है जो योग का चिंतन करता है। उस स्थान पर ध्यान केंद्रित करता है जहां पर जीव और ब्रह्म का भेद समाप्त हो जाता है। जो चित को परम चैतन्य में अवस्थित करके पूजा करते हैं, वे ही वास्तव में जंगम नाम के अधिकारी हैं। सच्चा योगी वही है जो संसार के प्रति आसक्ति को भस्म कर लेता है तथा चिंतनपूर्वक सहज तत्त्व को ग्रहण करता है। वह अपने अंतःकरण में ही अभय तत्त्व से परिचय प्राप्त करके बात करता है। उसी का मनन और निदिध्यासन करता है। ऐसे योगी का निश्चय कभी डिगता नहीं है। हे जैनी, तुम अहिंसा द्वारा जीव की रक्षा करने का दंभ भरते हो, पर यह तो विचार करो कि तुम किस जीव का उद्धार कर रहे हो? (जीव का स्वरूप पहचान कर) यह जानने का प्रयत्न करो कि चौरासी लाख योनियों का स्वामी कहां रहता है? इस रहस्य को समझने पर ही तुमको मुक्ति की प्राप्ति हो सकेगी।

तत्त्वार्थ यह कि कबीर अंधकार से प्रकाश की ओर, अज्ञान से ज्ञान की ओर, असत्य से सत्य की ओर, नश्वर से शाश्वत की ओर जाने की सलाह देते हैं। कबीर माया से मुक्त होकर निर्भ्रांत सत्य से साक्षात्कार करने की सलाह देते हैं। सब को एक तथा सब के मालिक को भी एक बताते हैं। मार्ग और मंजिल दोनों को एक सिद्ध करते हैं।

कबीर साईं से केवल उतना ही मांगते हैं जितने से उनके कुटुंब का निर्वाह हो जाये। क्यों? क्योंकि वे आर्थिक भिन्नता को मिटाना चाहते हैं। यदि कोई जरूरत से ज्यादा रखेगा तो यह निश्चित है कि किसी को जरूरत भर नहीं मिलेगा। इस असमानता के आते ही

सभी तरह की समरसता समाप्त हो जायेगी। सामाजिक उच्चवचनों का आक्रमण होने लगेगा। जैसा आज हो रहा है। बीस प्रतिशत लोगों के पास अस्सी प्रतिशत धन है और अस्सी प्रतिशत के पास बीस प्रतिशत जीवन के संरजाम हैं। परिणाम क्या है? सौ-पचास रुपये के लिए हत्या हो रही है। रोटी के लिए डाका पड़ रहे हैं। कफन के दाम के लिए रोड जाम हो रहा है। पेट भर अनाज के लिए गोदाम लूटा जा रहा है तो कोई गोदाम भर अन्न एक ही पेट में भर लेने के लिए पागल हो रहा है। कल से यदि एक रोटी मात्र के लिए हत्या, एक मुट्ठी भात के लिए वेश्यावृत्ति तथा एक हाथ कपड़ा के लिए दंगा होने लगे तो आश्चर्य नहीं। कबीर इसी दुर्दिन के भय से संचय से बाज आने की चेतावनी दे रहे हैं। यह भी कह गये कि माटी के ढेर जमा करने में ही पिले रहे तो माणिक के मालिक तथा मुक्ति के दाता के दरबार में प्रवेश वर्जित हो जायेगा। तुम्हारा सृजेता समताभावी है तथा समता का आकांक्षी है इसलिए भिन्नता को छोड़कर अभिन्नता में विश्वास करो। कोयले पर नहीं सोने पर छापा मारो।

कबीर ने कहा—“नारायण ने नर और नारी को एक ही मिट्टी से बनाया है। दोनों सजातीय तथा समरूप हैं। इनमें भिन्नता मत देखो। उसके हाथ के खाना खाने से जीवित रहते हो और उसे ही अपवित्रता की खानी कहते हो। यह तुम्हारा कैसा दृष्टिदोष है? नारी के भीतर जो आत्मा है क्या उससे भिन्न है तुम्हारी आत्मा? नारी यदि मुक्ति की अधिकारिणी नहीं है तो तुम कैसे? आये तो नारी की देह से ही हो। इस नाते तो पहले वह मुक्ति की अधिकारिणी है। उसे तुच्छ मत समझो, वरना तुम्हारा आविर्भाव समाप्त हो जायेगा। अभिन्नता में ही आनंद है।

कबीर हिंसा विरोधी हैं। लेकिन केवल पशु हिंसा को वे हिंसा नहीं मानते। मनसा, वाचा, कर्मणा किसी भी स्तर पर की जाने वाली हिंसा को वे स्वीकार नहीं करते। वे हिंसा को अपराध मानते हैं। इसलिए कि हिंसा से विभेद तथा भिन्नता का सृजन होता है। कबीर

अभिन्न हैं। वे भिन्नता को स्वीकार नहीं कर सकते। वे आचरण में आई भेद बुद्धि को हिंसा मानते हैं। किसी भी कारण से, किसी भी आधार पर किसी से भी भिन्नता प्रदर्शित करने को वे हिंसा कहते हैं। हिंसा के रहते व्यक्ति न तो आदमी के साथ सद्व्यवहार कर सकता है और न सर्वेश्वर की सन्निधि ही प्राप्त कर सकता है।

हिंसा के ठीक विपरीत अहिंसा ईश्वर से जुड़ने का साधन है। संसार में ईश्वर को बुलाने और बसाने का दिव्य पथ है। अहिंसा द्वारा मनुष्य ईश्वर तक पहुंचता है। ईश्वर बन जाता है। मनुष्य में ईश्वर का अवतरण होता है। अहिंसा के मंदिर में ही देवता का अवतार होता है। वह मंदिर देह है। गृहस्थ का हो या संन्यासी का। हिंसा का आधार द्वैत है। अहिंसा अद्वैत वाली है। भेदभाव हिंसा को बढ़ाता है। अभेद अहिंसा का साध्य और साधन दोनों है।...

भक्ति जोड़ती है। न केवल जीव बल्कि जड़ से भी। सत् (जड़) चित (चेतन) एवं आनंद के सम्मिलित रूप को ही सच्चिदानंद कहते हैं। सच्चिदानंद की पूर्णता तो सत्, चित और आनंद तीनों से होती है। तीनों में एक कम होने से सच्चिदानंद प्रभु अपूर्ण हो जायेगा। शायद अस्तित्वरहित न हो जाये। इसलिए संत को सत् की भी उतनी ही चिंता है जितनी चित और आनंद की। घट-घटवासी के साथ ही घट भी महत्त्वपूर्ण है। घट फुटेगा, नष्ट होगा। इसलिए कोई भी इसे न तो फोड़ता है, न नष्ट करता है। बल्कि साधना सिद्धि के लिए इसका सुंदर उपयोग करता है। प्रत्येक वैष्णव इन तीनों तत्त्वों का उपासक होता है। संत के हृदय में कोई निजी दुख नहीं है। वह पर दुख से द्रवित होता है। वैष्णव दृष्टि भोग और योग के बीच वाली है। राम के भरत राज्य को त्यागकर वैराग्य नहीं, अहिंसा का परिचय देते हैं। यह राज्य उन्हें हिंसा से मिला था। अन्याय से मिला था। वे उसके अधिकारी नहीं थे। अन्याय हिंसा है। भरत ने इस हिंसाधारित राज्य को छोड़ दिया। प्रायश्चित्त किया। स्वयं कपड़ा बुनते। अपने भी पहनते, दूसरों को भी पहनाते।

ग्रामोद्योग, छोटी या आत्मनिर्भर तकनीकी के मूल में प्रकृति, पदार्थ और पुरुष के शोषण से बचने का सिद्धांत है। अहिंसक दृष्टि के अभाव में शोषण समाप्त नहीं हो सकता। इस बात को वैष्णवों ने अच्छी तरह समझा था। प्रकृति और पदार्थ का शोषण करने वाला समाज मनुष्य के प्रति सहिष्णु नहीं हो सकता। इसीलिए देवबलि भले ही समाप्त हो गई हो किंतु देश-समाज के स्तर पर बलि को निंदनीय नहीं माना जाता है। सैकड़ों वर्षों की देवबलि किसी भी एक देश का शोषण के सामने अपनी लघुता में लज्जित हो जाती है। अहिंसा देने की प्रवृत्ति है। हिंसा लेने की। इसलिए जिन समाजों ने अहिंसा नहीं अपनायी उनका समाज शोषण पर खड़ा है। समानता की बातें केवल दिखावटी हो गईं। हिंसा और समानता का वैर है। समानता में कैसी हिंसा? हिंसा और समानता दोनों साथ नहीं चल सकते। सभी हथियार भक्षक होते हैं। रक्षक हथियारों की बात कल्पना मात्र है। रक्षक हथियार तो केवल अहिंसा है। हथियार-मुक्त अहिंसक समाज ही आत्मिक विकास की बातें सोच सकता है। कभी हिंसा का जन्म पशु-पक्षियों को मारकर उदर भरण के लिए हुआ था। आगे यही हिंसा देशों और समाजों को मारकर घर भरने का साधन बन गई। वर्ग, वर्ण, छुआछूत, रंगभेद, बलात धर्म परिवर्तन आदि का समाज विकसित हुआ। दूसरों के श्रम पर जीने की हिंसा। इसलिए कबीर सभी तरह की हिंसा को भिन्नता उत्पन्न करने वाला कारक बताते हैं। एक-एक कर हिंसा के प्रकार को बताते हैं तथा उसी तरह अहिंसा के लाभ को भी गिनाते हैं। इसके पीछे उनका मंतव्य जीव के जीवन के उद्देश्यों को स्पष्ट करना है। भेद को मिटाना है। उस भेद को जिसके कारण जीवन का उद्देश्य अभेद्य बना हुआ है। इसके पीछे कबीर का कोई स्वार्थ नहीं है। वे तो स्वार्थियों को निःस्वार्थ होकर आनंदित होने का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

एको दृष्टामि सर्वस्व मुक्तप्रयोऽसि सर्वदाः ।

अयमेव हि ते बन्धो दृष्टाहं पश्यसीतरम्॥

जीव मात्र द्रष्टा है। वह दृष्टि नहीं है। दृष्टि में ही भिन्नता होती है लेकिन जब दृष्टि द्रष्टा की भूमिका में आ जाती है तो भेद-भाव समाप्त हो जाता है। तब सब कुछ एक-सा दिखने लगता है। अपने ही-सा समग्र संसार दिखने लगता है। भेद कहीं दिखता ही नहीं है। एकता में भिन्नता कहां! जब हम अपने को दूसरों से भिन्न देखने का उपक्रम करते हैं तो स्वभावतः विभेद का जन्म हो जाता है, अपने-पराये का बोध होने लगता है। लेकिन अपना तो एक ही है जो सबका है, स्वतंत्र है, चैतन्य है, चिन्मय है, सच्चिदानंद है। इसलिए कबीर इस संक्रमकता से उबरने की सलाह देते हैं। कबीर जीव को कर्ता नहीं मानते। जीव को अपने को कर्ता मानने से मना करते हैं। इसलिए अपने स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

कर्तापन का भाव अहंकार का जनक है। अहंकार से रस्सी सांप तथा सर्वेश्वर क्षणभंगुर दिखने लगते हैं। जो अपने को कर्ता मानता है, वह गरल का पान करता है। जो अपने को कर्ता का उपादान मानता है वह अमृत का पान करता है। कर्तापन के भाव के जाते ही आनंद का आगमन होता है। अहंकार मिट जाता है। अंधकार भी समाप्त हो जाता है। स्वतः सर्वत्र प्रकाश हो जाता है। प्रकाश में धोखा कैसा! भूल जाने का भय कहां! तब तो मार्ग और मंजिल साफ-साफ दिखने लगते हैं। लक्ष्य तथा लक्षित दोनों स्पष्ट हो जाते हैं। आत्मा पर की कालिमा छंटने लगती है। शाश्वत स्वरूप का दीदार होने लगता है।

कबीर कहते हैं—बंधन के वन को जला डालो। अज्ञान के अरण्य को फूंक डालो। भेद के भयावह जंगल को भस्मसात करो। ये सब एकनिष्ठा की आग से ही जलते हैं। इसलिए एकनिष्ठा की अग्नि को अपने भीतर प्रज्वलित करो। आग में जले हुए में जिस तरह विभेद नहीं किया जा सकता ठीक उसी तरह एकनिष्ठा के उत्पन्न होते ही विभेद बुद्धि का नाश हो जाता है। बंधन मुक्त कैसे हुआ जाये? बंधन मुक्त वही हो सकता है जो अपने को बंधन मुक्त करना चाहता है। ठीक

उसी तरह जो बंधन में रहना चाहता है, उसे बंधन-मुक्त नहीं किया जा सकता। इसीलिए कहा गया है, जैसी चाह वैसी राह।

इसकी पहचान कैसे करें? कबीर कहते हैं पहचानकर्ता हमारे भीतर है। हमारा स्व, हमारी आत्मा। यह सत्य-असत्य में स्पष्ट रेखांकन कर देती है। हम माया के कारण रेखांकन को नहीं देखते। माया मृगतृष्णा का महावन है। यहां बालू में पानी तथा पानी में बालू दिखने का व्यापार होता है। मतलब सांच को झूठ तथा झूठ को सांच समझाना माया का काम है। सत्य सर्वेश्वर चैतन्य तथा कर्ता है। शेष माया है। चैतन्य को पहचानने की क्रिया करते-करते आत्मा माया मुक्त हो जाती है। चैतन्यवत हो जाती है। भिन्नता मिट जाती है।

आदमी अपनी बाहरी तथा आंतरिक बुराइयों को छोड़ना चाहता है लेकिन बिना चैतन्य के चिंतन के ऐसा नहीं होता। माया इसमें व्यवधान उत्पन्न करती है। इसका उपाय यह है कि हठ को छोड़कर सहज मार्ग का अनुसरण किया जाये। ताप की तपन को बुझाने के लिए हम शीतल पदार्थों का सहारा लेते हैं। लेकिन ताप क्षण विशेष के लिए घटता है। फिर बढ़ जाता है क्योंकि बीच में अवलंब है। अवलंब की आशा जो नहीं करते वे गर्मी में भी अग्नि का सेवन करते हैं और जाड़ा में जल में रहते हैं। कहां प्रभावित होते हैं? प्रभावहीन बने रहने का कारण है उन पदार्थों के निःसंचयक बने रहना। कर्ता का स्रोत तो अन्यत्र है। इसलिए उस अशेष स्रोत से संबंध स्थापित करने के लिए सभी संबंधों-सहारों को छोड़ना पड़ता है। मार्ग सहज का है, शेष कुमार्ग है।

कबीर अभिमान छोड़ने के लिए कहते हैं और अभिमानी बने रहने के लिए भी कहते हैं। लेकिन यह उलझन नहीं है। वे देहाभिमान छोड़ने के लिए कहते हैं और आत्मा पर अभिमान करने के लिए भी कहते हैं। कहते हैं—देहाभिमान व्यर्थ है, क्योंकि यह नश्वर है। आत्मा का अभिमान सही है क्योंकि यह अमर है। इस

आत्मा में शाश्वतता है, शरीर में नश्वरता। आत्मा पर अहंकार करने से परमात्मा का ज्ञान प्राप्त होता है, देह का अभिमान करने पर केवल दुख की सौगात मिलती है। अज्ञान देह का दर्शन कराता है। ज्ञान आत्मा के अस्तित्व का ज्ञान कराता है।

कबीर किसी शर्त को मानने की मनाही करते हैं। शर्त में संदेह का सर्प तथा विभेद का बाघ छिपा रहता है। जीव के साथ यह शर्त नहीं है कि उसे अमुक जाति-वर्ण में जन्मना ही होगा। लेकिन जीव ऐसा मानता है। कबीर कहते हैं—तुम तो निरपेक्ष, निर्विकार, निर्भय, अगाधबुद्धि, अक्षुब्ध तथा चिन्मय की संतान हो। तुम इच्छा रहित हो, इच्छा के घेरे में क्यों फंसते हो? मुक्त हो बंधनयुक्त क्यों होते हो? शर्तहीन हो शर्त पर शर्त और तर्क पर तर्क क्यों गढ़ते हो? फूटा कुंभ जल जलहिं समाना की स्थिति में आओ, सब भ्रम स्वाहा हो जायेंगे तथा तुम निर्भ्रम-निर्भय हो जाओगे।

आदमी अपने को दर्पण का आदमी समझता है। दर्पण में दिखता तो आदमी का चेहरा ही है। लेकिन क्या उसमें प्राण है? उसी तरह शरीर दर्पण को हम अपना असली चेहरा मानते हैं। भिन्नता यही है जैसे—दर्पण के चेहरा में प्राण नहीं है वैसे ही इस देह में मिला हुआ कोई प्राण नहीं है। वह देह से अलग है। अलग इसलिए है क्योंकि वह परदेशी है। परदेशी का संबंध परदेशी से ही संभव है। इसलिए कबीर देह और दर्पण के चक्र से मुक्त होकर शाश्वत का शाश्वत से संबंध स्थापित करने की सलाह देते हैं, दर्पण और देह की भिन्नता को मिटाना चाहते हैं। जब देह और देही एक नहीं है तो दर्पण रूप बनकर अपने जीवन के निहितार्थ को बरबाद करना बुद्धिमानी कैसे है? इसी भिन्नता को मिटाने के लिए अभिन्न से नाता जोड़ने की वकालत करते हैं।

आत्मा केवल देह से ही पृथक नहीं है, बल्कि समग्र सृष्टि का प्राणतत्त्व होते हुए भी सृष्टि से पृथक है। यह सृष्टि आत्मा के कारण है लेकिन यह सृष्टि आत्मा नहीं है। आदमी सृष्टि और सृष्टिवासी को अभिन्न

समझता है।... आत्मा बेदाग, शांत है। सृष्टि घर तो काजल का है, अशांति इस घर की दुलहन है। फिर सृष्टि और सृष्टि का कर्ता अभिन्न कहां हैं! अभिन्न केवल चेतना और चैतन्य है। जन्म-जन्मांतर का कारण इसी अभिन्नता में भिन्नता देखना है। जो भिन्नता से मुक्त हो जाता है, वह जन्म-मरण से भी मुक्त हो जाता है, अभिन्न का अंश बन जाता है।

विश्व का दर्शन अज्ञान की आंखों से होता है। विश्व की शाश्वतता दृष्टि का दोष है। नित्य परिवर्तनशील तथा विनाश को प्राप्त होने वाले पदार्थ को हम शाश्वत मानते हैं। यह विश्व क्या एकरूप था, एकरूप है और एकरूप रहेगा? फिर जो स्वयं परिवर्तनशील है उसे हम शाश्वत क्यों मानते हैं? विश्व काया रहित है और माया की चादर में लिपटा हुआ है। आत्मा तत्त्व है और नाशवान देह में है। हम इस बेमेल जोड़ी को बेजोड़ जोड़ी मान रहे हैं। लोहे के जंजीर को मुक्ति का ताबीज मान रहे हैं। दुख का कारण यही द्वैत या दुविधा है। द्वैत स्वयं को नहीं पहचानने के कारण उत्पन्न होता है। स्वयं की पहचान तो अद्वैत का भान करा देता है। इसलिए कबीर स्वयं को पहचानने पर बल देते हैं।

बुद्ध को बालक, युवक, वृद्ध और मृत सब में दुख दिखा। क्यों? तब तक उनकी दृष्टि में स्थूल का दर्शन था। इस दुख की निवृत्ति के लिए वे राजपाट, पुत्र-पत्नी सबको छोड़कर निकल पड़े। जब तक दुविधा में थे तरह-तरह की तपस्या तथा योग किये। कोई लाभ नहीं मिला। द्वैत जो साथ था। जब ज्ञान हुआ कि यह सब तो देह को हो रहा है। देही तो इन सबसे निर्विकार है। बालक बूढ़ा क्यों हो गया? युवक मर क्यों गया? कोई भी परिवर्तन से वंचित कहां है? तो क्या है यह? यह माया है। कायाहीन ठगनी। इसके अंदर जो है वह दुखी या नाशवान कहां है? वह तो शाश्वत है। नाशहीन है। अभिन्न का अभिन्न सखा है। उन्हें बौद्धत्व की प्राप्ति हो गई। वे निर्विकार हो गये। प्रशांत हो गये। कबीर भी सबको इसी प्रशांति को प्राप्त करने के लिए प्रेरित करते हैं। बालपन, यौवन, बुढ़ापा की भिन्नता के भ्रम को

त्यागकर चिरयौवन आत्मा की चेतनता तथा एकता को पहचानने का अलख जगाते हैं।

कबीर चेतना को भी स्थूल तथा सूक्ष्म मानते हैं। जब तक हम जगत का चिंतन करते रहते हैं, हमारी चेतना स्थूल बनी रहती है। हम अपनी दिमागी अवस्था की उपज को ही शाश्वत धन मानते हैं। चैतन्य को अपने चिंतन के अनुसार आकार देते हैं। इसके कारण चैतन्य चिंता का विषय बन जाता है। एक से अनेक दिखने लगता है। जिसकी चिंता जैसी होती है, वह उसकी वैसी ही तस्वीर बना लेता है। भिन्नता का साम्राज्य कायम हो जाता है। कबीर स्थूल चिंतन की मनाही करते हैं। वे चैतन्य की अनुभूति के लिए सूक्ष्म या चैतन्य चिंतन करने की बात कहते हैं, चिंता और चैतन्य का नहीं। चैतन्य और चैतन्य का संबंध स्थापित करने की बात कहते हैं।

कबीर ने वर्णाश्रम व्यवस्था की निंदा की। इसका अर्थ लोग मात्र इतना भर लगाते हैं कि वे जागतिक वर्ण-व्यवस्था को समाप्त करना चाहते थे। लेकिन इसका तत्त्वार्थ कुछ और भी है। कबीर का निहितार्थ है कि कोखज, अंडज, श्वेदज तथा उद्भिज जिस भी तरीके से जीव का जन्म हो, सब में एक ही तत्त्व विद्यमान होता है। जब चार प्रकार से जन्म लेने वाले प्राणियों के प्राण में एकत्व है तो एक प्रकार का प्राणी चार वर्ण का या चौंसठ गोत्र का कैसे हो सकता है? इस तरह की भ्रांति दूसरों की हानि के लिए नहीं, अपनी बरबादी के लिए है। कबीर इस दृष्टिकोण से आदमी की अभिन्नता को प्रतिपादित करते हैं। कबीर का विचार कितना उदात्त है, कितना व्यापक है, यह स्वयमेव विचारणीय है।

देह क्या है? यह पंचतत्त्व, मानस, अहंता तथा इंद्रिय लोलुपता का समुच्चय है। देह का देही इस सबसे पृथक स्व तथा स्वतंत्र है। हम उस स्वतंत्र का दर्शन इन परतंत्र अवयवों के माध्यम से करना चाहते हैं। इन जागतिक अवयवों का काम चैतन्य का चिंतन कराना नहीं, उससे विमुख कराना है। हम आग से आग

को बुझाना चाहते हैं। यह संभव कैसे होगा! देही को हम देह का वस्त्र, दिमाग का अन्न तथा चिंता का जल पहना, खिला एवं पिलाकर संतुष्ट करना चाहते हैं जबकि ये तीनों उसकी मुक्ति के नहीं, बंधन के संरजाम हैं। वह तो स्वतंत्रजीवी, स्वतंत्रगामी तथा स्वतंत्र-स्वभावी है। वह स्वतंत्रता चाहता है, हम परतंत्रता के प्रसाद से उसे पूजने का प्रयास करते हैं। फिर दोनों का कल्याण कैसे होगा! झूठ-सांच मिल जायेंगे तो विभेद कैसे होगा! कबीर इसलिए झूठ को झूठ तथा सांच को सांच मानने की सलाह देते हैं।

आत्मा का भान कब होता है या आत्मा स्वतंत्र कब होती है? जब इच्छा रहित हो जाती है। हमें दुख या सुख की अनुभूति नहीं होती या हम निरपेक्ष हो जाते हैं। चित्त की चंचलता समाप्त हो जाती है। चित्त चंचल जल का समुद्र है। इसमें वृत्तियों की आवृत्ति लहर के रूप में होती रहती है। इसलिए इसमें निर्विकार आत्मा दिखाई नहीं पड़ती। विकार के जल से भरे समुद्र में निर्विकार का दर्शन कैसे होगा! इसलिए चित्त के निर्मलीकरण तथा स्थिरीकरण की आवश्यकता पर कबीर बल देते हैं। कहते हैं कि चित्त का चंचल समुद्र गहरा तथा विस्तृत है। इसकी सुषमा के चक्कर में ऋषि, मुनि तथा योगी-यती तक फंस जाते हैं। इसलिए इसकी झूठी सुषमा से बचने की आवश्यकता है। चित्त के चंचल चितवन में रंगहीन आत्मा को पहचानना आसान काम नहीं है। इसके लिए सभी तरह से शांत तथा निर्मल होना होगा। जब चित्त का जल निर्मल होगा तब अपने अस्तित्व का ज्ञान होगा। माया से भिन्न कर कबीर मायारहित से अभिन्न संबंध स्थापित करने के लिए अभिन्नता पर जोर देते हैं।

अहंकार माया का वरद पुत्र है। यह बंधन, व्यथा तथा बरबादी का धन उपार्जित करता है। देह और दिमाग इसकी दो बांहें हैं। अज्ञान और तृष्णा इसकी आंखें हैं। भूख इसका मुंह है। हिंसा इसकी जिह्वा है। चंचलता इसका चित्त है। प्यास इसके पैर हैं। असंतोष उदर है। अनंत इच्छा इसकी आत्मा है। अंधकार इसका

पथ प्रदर्शक है। क्रोध शोणित है। संचयवृत्ति इसके तंत्रिका तंत्र हैं। बरबादी इसका प्रारब्ध है। कबीर इसलिए कहते हैं—“जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहिं।” इसी मैं (अहंकार) से कबीर मुक्त होने को कहते हैं। यह मैं मैत्री का शत्रु है। मिलन का दुश्मन है।

अपूर्णता में बार-बार पूर्णता प्राप्त करने के प्रयास के कारण हमें दुख की अनुभूति होती है। दुख एवं सुख, अच्छा और बुरा हमारे मस्तिष्क (चित्त) की उपज है। वस्तुतः दुख और सुख में स्थिरता या शाश्वतता है ही नहीं। यह परिवर्तनशील परिवर्तनों के कारण स्वयं परिवर्तित होता रहता है। यह परिस्थितियों का उत्पादन है। कबीर कहते हैं कि जो दुख-सुख की परवाह नहीं करता वही इससे मुक्त होता है। अर्थात् चित्त की वृत्ति से निवृत्त होकर जो आत्मा के आंगन में स्थित होता है, वह दुख-सुख की उत्पत्ति का कारण समझ लेता है, इसकी निःसारता को जान जाता है। अनेकता के झमेलों से मुक्त हो, एकता की शाश्वतता में शामिल हो जाता है।

इंद्रियों का दूत अहर्निश हमको लूटने में लगा है। हमें प्रतीत होता है कि वह अन्यत्र से लूटकर हमारे लिए भोग-विलास, सुख-सम्मान, शांति-समृद्धि, प्रशंसा-प्रसन्नता की सामग्री ला रहा है। लेकिन इंद्रियां हमें ही कंगाल कर मालामाल करने के भ्रम में डालती हैं। सुस्वादु व्यंजन, सुंदरी का संग, ऐश्वर्य का एवरेस्ट, मान-अभिमान की अभिनेत्री, सुगंध की सौगात, शोहरत का तमगा पाने के लिए हमारी इंद्रियां हमें बहकाती रहती हैं। हम श्मशान के बैताल की तरह उसके इशारे पर मदारी के बंदर की तरह नाचते रहते हैं। एक को पूरा कर दूसरे के लिए श्वान की तरह दौड़ते रहते हैं। समय हाथ से सिक्ताकण की तरह निकलता जाता है। जब तक होश होता है, तब तक समय तथा आयु की संपत्ति लुट चुकी होती है। बीमारी की सेज स्वागत के लिए प्रतीक्षा करती दिखती है। अफसोस की दुलहन साथ में सुहागरात मनाने के लिए निमंत्रण देने लगती

है। चारों तरफ पश्चाताप की मातमी धुन बजने लगती है। हाय, हाय, आह, ओह का बाजार गर्म हो जाता है। करना कुछ होता है, होने कुछ और लगता है, क्योंकि इंद्रियों का लुटेरा हमें स्व की अनुभूति से दूर ले जाकर माया के मकड़जाल में फंसा देता है। इसलिए कबीर इन लुटेरों से मात्र सावधान नहीं, अलग, बिलकुल पृथक रहने को कहते हैं। इंद्रियों के इंद्रजाल से मुक्त होकर निर्भ्रात का संग अखितयार करने का सुझाव देते हैं। भिन्नता के भवंरजाल से निकलकर निर्भ्रात के साथ होने की सलाह देते हैं।

कबीर इंद्रियगोचर पदार्थों से निवृत्ति की सीख देते हैं। इंद्रियों को संतुष्ट करने वाली चीजों को मात्र शत्रु नहीं, विष कहते हैं। जो इंद्रियों को मुक्त करने वाली वस्तुओं से निरपेक्ष है, वास्तव में वही स्वतंत्र है। इंद्रिय लोलुपता बंधन है, इस सत्य का ज्ञाता तथा अनुपालक ही सही ज्ञानी है। सत्य का ज्ञान ही जीव को सही मायने में बुद्धिमान, विवेकी तथा विमल बनाता है। अज्ञान तो हमें जड़, अप्रिय तथा अकर्मण्य बनाता है। स्व का ज्ञान और सत्य की पहचान से क्या लाभ होता है? इससे जो अद्वैत है, पूर्ण सत्य है, पूर्ण आनंद है, अनश्वर अमिय-कोश है, उसका ज्ञान होता है। भ्रम का भूत पीछा छोड़ देता है। इस एक की प्राप्ति के बाद कुछ भी प्राप्त करने लायक शेष नहीं रह जाता है। इस अवस्था को प्राप्त व्यक्ति ही वास्तव में ऋषि, मुनि या योगी कहलाता है। जो मिट्टी में गड़कर श्वास रोकते हैं, पानी में खड़ा होकर व्रत करते हैं, आजीवन खड़ा होकर खड़ेश्वरी बाबा कहलाते हैं, मौन धारण कर मौनी बाबा बनकर पूजा करवाते हैं, प्रपंच के लिए प्रवचन का प्रसाद बांटते हैं, वे आत्मज्ञानी नहीं, अभिमानी एवं अज्ञानी होते हैं। कबीर संसार एवं संसारी क्रिया-कलापों की निःसारता को देख-समझकर ही ऐसा कहते हैं। उन्होंने भी संसार में आनंद का व्यापार करने का प्रयास किया था। लेकिन जब उन्हें इसका ज्ञान हो गया कि यह व्यापार मात्र कठिन नहीं, असंभव है तब चौक-चौराहा पर खड़ा होकर सबको खबरदार करने

लगे। कहने लगे तुम देह नहीं हो और यह देह तुम्हारी नहीं है। यह देह कर्ता या उपभोक्ता है, देही नहीं। देही चेतन तथा अनंत है। तुम इसका संबंध बार-बार देह से क्यों स्थापित करना चाहते हो? देह पिंजरा है, देही तो मात्र साक्षी है। स्वतंत्र तथा निर्बंध है। इसे इंद्रियों के मेला में मत भरमाओ, बहुत पछताओगे। यह कर्ता, कर्म, क्रिया, उपादान, अपादान, क्रिया-विशेषण, वचन, लिंग, पुरुष, कुछ नहीं है। यह बेटा-बेटी, पति-पत्नी, माता-बहन, युवक-बूढ़ा, बालक-किशोर भी नहीं है। यह भोक्ता-उपभोक्ता भी नहीं है। यह तो हंस है, जिसका एकमात्र जीवन लक्ष्य है—“अन्न न खाना, जल न पीना, प्रभु से नेह लगाना। पंख तेरा तब उड़ पाएगा, दूर बहुत है जाना।”

मन एक पेड़ है जिसमें इंद्रियों का फूल तथा राग और द्वेष का फल लगता है। मन प्रकृति का पुत्र है। यह जीव को स्वभावतः प्रकृति पार नहीं होने देना चाहता है। मन अपने उद्यान में इच्छाओं को रंगरेलियां मनाने के लिए तरह-तरह से आमंत्रित करता है। कहता है—मेरे उद्यान में बारहों मास बसंत रहता है, उर्वशी, रंभा, मेनका आदि यहां बहार का गीत गाती हैं और सबके स्वागत के लिए पत्नीवत तैयार रहती हैं। इसमें भोग के एक नहीं अनेकशः भोग भवन हैं। यहां हमेशा मदनोत्सव का माहौल रहता है। आओ, सब आओ और इस सुख का उपभोग करो! लेकिन मन के इस उद्यान में वास्तव में विनाश का व्याघ्र छिपा हुआ है, बरबादी का वनबिलाव घूम रहा है, विनाश का व्याल फन फैलाकर फुंफकार रहा है, दुख का दावानल दहक रहा है, दैन्य का दुर्ग स्वागत को तैयार है, भ्रम का भेड़िया गुर्रा रहा है, संस्कारहीन करने वाली वेश्याएं विचर रही हैं। मन के आमंत्रण पर एक बार जो इस बाग में जाता है, जन्म-जन्म तक इसका गुलाम बनकर रह जाता है। आश्चर्य तो यह कि इसी गुलामी को वह स्वतंत्रता मानने लगता है। मन के मैजिक को मुक्ति का मार्ग समझने लगता है और विनाश के वेधशाला को निर्माण का प्रयोगशाला बूझने लगता है। कबीर मन के

इस प्रपंच में पड़ने से मना करते हैं। वे कहते हैं,—
“देह में जो देही है, उसे इस सब से कोई मतलब नहीं है। वह प्रेम या घृणा करना नहीं जानता। तुम देह के धंधा को देही का कर्तव्य मत मानो। यहां जो कुछ दिख रहा है वह मात्र क्षणभंगुर ही नहीं सत्यानाश का स्वर्णिम जंजीर है। देही इस सब से भिन्न है। यह चेतना की चेली और महाचेतना की सहेली है।”

वे कहते हैं—“देही को पहचानो। एक है। अनेकता आंख का दोष है। भिन्नता भय का दूसरा रूप है। हमें सभी प्राणियों, पदार्थों, प्रस्तुतों में भिन्नता हमारे मन के कारण दिखती है। इनमें तो अभिन्नता का संबंध है। अपने स्वरूप को मन से पृथक करो। ये सारी पृथकताएं स्वयं समाप्त हो जायेंगी। मन तुम्हें समुद्र की लहरें बनाकर समुद्र से अलग किये हुए है। क्या समुद्र की लहरें समुद्र से या समुद्र जल से अलग होती हैं, हो सकती हैं? फिर तुम भिन्नता की भेड़ियों का शिकार क्यों बन रहे हो?”

कबीर इसका लाभ भी बताते हैं। कहते हैं,—
“क्या बाप-बेटा अपने को पृथक मानते हैं? पति-पत्नी एक-दूसरे से विलग मानते हैं। बैंक के एक लॉकर में रखा रुपया दूसरे के घर में रखा रुपया माना जाता है? नहीं। तो तुम भी जब माया के चंगुल से मुक्त हो जाओगे तो सब अपना दिखेगा। “आत्मवत् सर्वभूतेषु” का भान होते ही भिन्नता की निरर्थकता का भान हो जायेगा। तब पास-परिवेश ही नहीं, संपूर्ण विश्व अपना लगने लगेगा। एक लगने लगेगा। जब विश्व ही एक लगने लगेगा तो अनेकता का विचार कैसे करोगे? जाति-पांति, वर्ण-लिंग, कुल-गोत्र का झमेला कहां रहेगा?” सिद्ध हो जायेगा—“लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल। लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल ॥”

देही शाश्वत तथा परिवर्तनहीन है। जैसे समुद्र की लहरें उठने पर समुद्र से टूटती नहीं और मिटने पर उससे जुटती नहीं, बल्कि दोनों ही स्थितियों में समुद्र जल का भाग ही बनी रहती हैं। वही स्थिति देही का

है। वह (आत्मा) से जुटता या छूटता नहीं है। प्रकृति के किसी भी सुख-दुख से आत्मा संपृक्त या असंपृक्त नहीं होती है। आत्मा काल और विकराल दोनों से मुक्त है। यह समुद्र जल रूपी आत्मा की लहरें हैं। द्रष्टा इसे समुद्र नहीं, लहर कहता है। इसमें आत्मा का दोष है या द्रष्टा का! लहर बनने की प्रवृत्ति छोड़ने पर ही समुद्र के गुणधर्म का ज्ञान होता है। लहरों में आवर्त होते हैं। सामाजिक आवर्तों को हम भिन्नता का कारक मान लेते हैं, जो मिथ्या है। जरूरत सबको समुद्र जल मानने की है, स्वयं समुद्रजल बन जाने की है।

इच्छा को कबीर कमीनी औरत-वेश्या कहते हैं। क्यों? क्योंकि इसके कारण जन्म-पुनर्जन्म के चक्कर में पड़कर पैमाल होना पड़ता है। जो स्वयं प्रकाश है, उसका जन्म नहीं होता। प्रकाश इच्छा की अनुपस्थिति में उत्पन्न होता है। यह इच्छा रूपी औरत ही देही को बार-बार जन्मने के लिए बाध्य करती है। जन्म होते ही कर्म करना पड़ता है। इच्छा कर्म को कुकर्म तथा सुकर्म को कुकर्म बतलाकर मार्ग भटका देती है। कर्म उसे प्राप्त करने के लिए प्रेरित करता है जो अपने पास नहीं है। लेकिन यह नहीं बताती कि अपना करने के भ्रम में जो कर्म प्राणी करता है उससे उसका कोई कल्याण नहीं होता। वह माया पंक में ही फंसता जाता है। कर्म मुक्ति का करना चाहिए लेकिन बंधन का उपक्रम करते-करते व्यक्ति आपादमस्तक जंजीरयुक्त हो जाता है। इसी मोड़ पर व्यक्ति का साक्षात्कार अहंकार से भी हो जाता है। यह अज्ञान के पेड़ पर विनाश के फूल में फलने वाला फल है। रस्सी में सर्प, विष में अमृत, विनाश में निर्माण, बंधन में मुक्ति की मूर्त दिखाना अहंकार का व्यापार है। कबीर इच्छा के इस विनाशलीला से बेहाल हैं। वे चिल्ला-चिल्लाकर इससे सावधान होने के लिए सतर्क करते हैं। कहते हैं—
“इच्छा के आकाश में विचरण मत करो। बेमौके मारे जाओगे। अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करो। भिन्नता तथा भ्रम के भंवर से निकलो तथा अपने शाश्वत स्वरूप का ज्ञान करो। इच्छा के आकाश में तो उड़ते-

उड़ते ब्रह्मा, विष्णु, महेश तक बरबाद हो गये। तुम क्यों अपना सत्यानाश कर रहे हो।”

कबीर चैतन्य, चेतन तथा चिद की अनुभूति के लिए अंतःवाचाल होने की बात कहते हैं। कहते हैं— बाहर बोलना, वार्तालाप करना, बोलते-बोलते बैताल बनना बंद करो। वेद, श्रुति, स्मृति, ब्राह्मण, पुरान, कुरान भी मत पढ़ो। अंदर में एक किताब है, उसे पढ़ो। अंदर में ही प्रश्न करो। अंदर में ही उत्तर मिलेगा। ऐसा करोगे तो स्वयं स्व को जान जाओगे और स्वयंभू का भी पता पा जाओगे। ऐसा करने के लिए सोने या जगने दोनों में से एक क्रिया करनी होगी। लेकिन सोना कुंभकरण वाला नहीं हो कि जगते ही संसार भर का भोजन खाने के लिए आतुर हो जाओ और जागना ऐसा नहीं हो कि फिर सोने पर स्वप्न सुंदरी की देह भोग का दृश्य देखने की जिज्ञासा जीवित रहे। जागो तो केवल जागृत को देखो, शाश्वत को देखो, परम सुंदर को देखो, परमेश्वर को देखो। सोओ तो ऐसे कि सांसारिक भोग-विलास से पूर्णतः निवृत्त होकर। ऐसे कि स्वप्न में भी कुछ नहीं दिखे। जागते शून्य, सोते में शून्य, आदि में शून्य, मध्य में शून्य, अंत में शून्य, सर्वत्र शून्य दिखे। सूर्य का प्रकाश जैसे महाशून्य-सा दिखता है। सोने-जागने से क्या फर्क पड़ता है! अंतःदृग् से जिसने एक बार परमपूर्ण के प्रकाश को देख लिया, वह अंधकार (माया, भिन्नता) का शिकार हो सकता है क्या?

ज्ञान प्राप्त करने का मार्ग बहुतों ने अपने-अपने ढंग से बताया है। लेकिन मेरी मान्यता है कि ज्ञान संतोष के वृक्ष का फल है। हम इच्छा के बिछावन पर अहंकार की गोद में ज्ञान का अमृत पान करना चाहते हैं। जब हमारी एकमात्र इच्छा होती है कि हमें कुछ नहीं चाहिए तो संतोष हो जाता है। संतोष के होते ही भिन्नता की दीवार भसक जाती है। संचय का शेर मर जाता है। स्वार्थ के शैतान से पिंड छूट जाता है। विभेद का बोंतू भाग जाता है। माया की ठगनी मुंह मोड़ लेती है। अपना-पराया का साथ छूट जाता है। हम अकेले बच जाते हैं। शेष जो भी बचता है, वह अकेले दिखता

है। अकेले और अकेले को जोड़ने पर योगफल अकेले ही निकलता है। अकेले आने और अकेले जाने का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। यही वास्तविक ज्ञान है। यह संतोष के वृक्ष पर फलता है। कबीर इसी ज्ञान को प्राप्त करने के लिए मायाजीवियों को प्रेरित करते हैं।

इस तरह के ज्ञान का एक और फायदा है। यह ज्ञान योग का ज्ञान देता है, संसार में आकर भटकने का कारण बताता है तथा घर लौटने का मार्ग प्रशस्त करता है। यह सत्य के ज्ञाता का ज्ञान करता है। बिछुड़े से जुड़ने का यतन बताता है। भ्रमियों का भ्रम दूर करता है। द्वैत के दुख से मुक्त कर अद्वैत के सुख का अहसास करता है।

ज्ञान रमने की कला भी सीखाता है। रोम-रोम में व्याप्त आनंद के स्रोत परमानंद में रमने की। यह इंद्रियों के रमणिक मेला से निकालकर इंद्रियातीत के शाश्वत स्वरूप का दर्शन कराता है। यह सांसारिक सौंदर्य की क्षणभंगुरता को वैसे ही दर्शा देता है जैसे सूर्य की किरणों ओस की बूंदों को सोखकर। यह ज्ञान भीतर में होता है इसलिए इसे आत्मज्ञान कहते हैं।

यह ज्ञान अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष सबका अर्थ बतला देता है। बतलाता है—‘यह सब बकवास है। इनसे आकर्षण या विकर्षण कुछ भी रखना वक्त की बरबादी है। ये सब के सब विकारी हैं। फांसी के फंदे हैं। हम यह सब जीवन और मृत्यु को ध्यान में रखकर करते हैं। लेकिन आत्मा तो इन दोनों से मुक्त है। इसलिए यह प्रपंच क्यों? यह तो आत्मा के लिए अर्थहीन है। फिर यह व्यापार क्यों? आत्मा को सृजन तथा निर्माण में आसक्ति कहां है! फिर यह नाटक क्यों? इसे तो अपने विराजधाम में विराजना है। तो इसकी तैयारी क्यों न हो!

राग हमें जन्म-मरण के समुद्र में ला गिराता है। समुद्र में हम नीचे रहें या ऊपर, हैं तो समुद्र में ही। इस जघन्य समुद्र से उपरम होने का एक ही उपाय राग-मुक्त होना है। लेकिन हम मुक्त होने के बदले इसी समुद्र को शाश्वत घर मानकर उसकी लहरों पर

हिचकोले खाते रहते हैं और इसे ही नंदन कानन का झूला समझते हैं। इस झूला के राग से मुक्त हुए बिना सद्गति नहीं है। हमें इसकी प्रशंसा-बुराई, गुणगान या शिकायत नहीं करनी है। वह यतन करना है कि इससे पिंड छूट जाये।

कबीर समवेत में कहते हैं कि मन, चित्त, अहंकार और इंद्रिय की वृत्तियों को माया के अतिरिक्त कुछ मत मानो। मैं, तुम के विवाद में भी मत पड़ो। जड़ता, बंधता, संदेह का परित्याग करो। कर्म करो तो ऐसे जैसे कुछ किया ही नहीं। अहंकार करो तो ऐसे कि सारा विकार मिट जाये। राग करो तो ऐसे कि सब कुछ से विराग हो जाये और ज्ञानी बनो तो ऐसा कि आत्मा को छोड़कर कुछ का भी ज्ञान ही नहीं रहे।

कबीर सबकुछ स्वयं को जानने के लिए कहते हैं। स्वयं को कैसे जाने? स्व को केवल स्वयं के द्वारा ही जाना जा सकता है। कैसे? स्वयं के अतिरिक्त जो कुछ भी है, वह नाशवान है। इसका ज्ञान होते ही स्वयं का भान होने लगता है। स्वयं को जानना विवेकीकरण तथा पृथकीकरण की प्रक्रिया है। हम नहीं चाहते हैं कि हमारा बेटा, पत्नी, परिवार हमसे अलग हो। हमारा यौवन, धन, सम्मान पृथक हो। लेकिन एक-एक कर सब हमसे अलग होते जाते हैं। क्यों? इसलिए कि वे हमारे नहीं हैं। हमारे स्वयं से पृथक हैं। जब अपने-आप जो (स्व) अपना नहीं हैं, पृथक होते जा रहे हैं, तो स्वयं की पहचान कैसे नहीं होगी?

भोग में रोग का भय बना रहता है। शान में बाण लगने का भय बना रहता है। धनार्जन में धर्म जाने का भय बना रहता है। सम्मान में अपमान का भय बना रहता है। पावर में पराजय का भय बना रहता है। सौंदर्य में शोक का भय बना रहता है। जन्म में मृत्यु का भय बना रहता है। लेकिन अविनाशी से नेह लगाने से कौन-सा भय बना रहता है? स्वयं को जानने से कौन-सा रोग हो सकता है? स्वयं प्रकाश में प्रकाशित होने पर किस अंधकार का भय सता सकता है? शाश्वत

का आश्रय ग्रहण कर लेने पर कौन निराश्रय कर सकता है? भिन्नता को छोड़ देने से हमें अभिन्न से भिन्न कौन कर सकता है?

हमें अपने होने या न होने का भय सदा सताता रहता है। लेकिन हम यह नहीं जानते कि हम शाश्वत हैं। हम न मरते हैं न जन्मते हैं। हम मात्र बंधनमुक्त या बंधनयुक्त होते हैं। बंधन से सबको घृणा है, भय है, आक्रोश है, दुख है, आपत्ति है। मुक्ति सबको प्रिय है, प्रियकर है, सुखकर है, आनंददायी है। यह बंधन भिन्नता भाव रखने के कारण है। भव से अभिन्नता तथा भगवान से भिन्नता मानने के कारण है। कर्म से घृणा तथा अकर्म से प्रेम करने के कारण है। घृणा को प्रेम और प्रेम को घृणा मानने के कारण है। घर को डेरा और डेरा को घर मानने के कारण है। मुक्ति के लिए कबीर अभिन्न से अभिन्न रिश्ता जोड़ने, मानव-मानव में एक ही जाति की आत्मा के होने की बात मानने तथा स्वयं प्रकाश को परम प्रकाश का प्रतिरूप मानने की सलाह देते हैं। कबीर कहते हैं—“न उपस्थिति है, न अनुपस्थित है, न द्वैत है, न दुविधा है। वह एक है, हम सब उसके वंशबेल हैं। वंश एक है तो वर्ण भी एक है, बेल एक है तो वर्ग भी एक है, वह अविभाज्य है तो हम सब भी अभिन्न हैं।”

(‘न बांटिये कबीर को’ से साभार)

✦ ध्यान दें, जिंदगी जब हंसाये तब समझना अच्छे कर्मों का फल मिल रहा है और जिंदगी जब रुलाये तब समझना अच्छे कर्म करने का समय आ गया है।

✦ ध्यान दें, सत्ता, संपत्ति, स्वास्थ्य, शरीर कभी भी सच्चा सुख नहीं दे सकते और अचानक छुट जाते हैं, किन्तु अच्छा स्वभाव, समझदारी और अच्छे कर्म कभी साथ नहीं छोड़ते। इसलिए सदैव अपने स्वभाव को अच्छा बनाकर रखें और समझदारीपूर्वक अच्छे कर्म करते चलें सुख आपके पीछे-पीछे घूमता रहेगा।

—अज्ञात

हमारा पांडित्य हमें उनसे दूर कर देता है

लेखक—श्री सदानंद साही

कबीर को हुए छह सौ से ज्यादा साल हो गये हैं, फिर भी कबीर का आकर्षण बना हुआ है। आखिर कबीर की कविता में ऐसा क्या है, जो हमें सदियों बाद भी आमंत्रित करता है? कबीर के पास पहुंचकर हमें सुकून मिलता है, तो दूसरी ओर उनकी कविता बेचैन भी करती है। प्रेमचंद की कफन कहानी के घीसू-माधो जब चरम उत्सव और उल्लास में होते हैं, ठीक उसी समय उन्हें अभाव की, दैन्य की काली छाया ग्रस लेती है। तब वे कबीर की शरण में जाते हैं, ठगिनी क्यों नैना झमकावै। कबीर से उन्हें ताकत मिलती है। घीसू-माधो जैसे हजारों हजार निहंग और असहाय लोग हैं, जिन्हें कबीर की कविता सहारा देती है।

मगहर कबीर की निर्वाण भूमि है। मैंने उसी मगहर के आस-पास के इलाकों से गोरखपुर शहर आने-जाने वाले मजदूरों, कर्मचारियों को देखा है। इनमें झुंड के झुंड ऐसे मिलते हैं, जो आते-जाते कबीर के भजन गाते रहते हैं। कबीर का भजन गाते हुए उनका रास्ता कट जाता है। कबीर बानी के सहारे रास्ता ही नहीं, उनका जीवन भी कटता है। कबीर की जिन उलटबांसियों पर हम विश्वविद्यालयों में पढ़ने-पढ़ाने वाले लोग सिर पटकते रहते हैं, वे उलटबांसियां इस सामान्य जनता को बखूबी समझ में आ जाती हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हमें बताया है कि कबीर की बानी कुछ अनपढ़ लोगों को ही भाती है। कबीर की कविता में ऐसा क्या है, जो अनपढ़ लोगों तक तो अपने आप पहुंच जाता है, लेकिन पढ़े-लिखों तक नहीं पहुंच पाता? यह दोष कबीर की कविता में है या हमारे पढ़ने-लिखने में?

कबीर की कविता केवल माया के मारे हुआओं को नहीं, माया से ऊबे हुए लोगों को भी संबल देती है। झूठ और पाखंड को बरतते, ढोते आदमी को कबीर की पुकार सुनाई पड़ जाती है—जो घर जारे आपना चले हमारे साथ। कबीर की कविता ऐसी है, जिस तक पहुंचने के लिए हमें निहत्थे जाना होगा। निहत्थे जाने का हमारा साहस नहीं है। हमने तो बहुत सारे हथियार

इकट्ठा किए हैं। आलोचनात्मक पंडिताई के बगैर हमारा काम नहीं चलता। कविता के पास हम आनंद के लिए नहीं जाते, बल्कि उपदेशक बनकर जाते हैं। यही मुश्किल है। कविता को परखने की जो विधियां हमने सीख रखी हैं, उन विधियों को परे रखकर हमें जाना होगा। कबीर ने भी इसका संकेत दिया है—कबिरा यह घर प्रेम का, खाला का घर नाहि। सीस उतारे भुंड धरे, तब पड़से घर माहि।

हमारी शिक्षा ने, हमारे पांडित्य ने, हमारे ज्ञान ने, हमारे अहंकार ने हमें पिछलग्गू बना दिया है। हमारी स्वतंत्र और उन्मुक्त दृष्टि ही नहीं रह गई। कबीर की चिंता यही है। यह चिंता वैयक्तिक भी है और सामाजिक भी। हमारा समाज इतने तरह के बंधनों में जकड़ा हुआ है, कबीर की कविता उन बंधनों को शिथिल करती है और हमारे जीने के लिए 'स्पेस' रचती है। कबीर मरने के बाद की उम्मीद नहीं दिलाते—लोहा माटी मिल गया तब पारस कवने काम।

(दैनिक 'हिन्दुस्तान' 13 जून 2014 से साभार)

समझें शाश्वत नियम को

रचयिता—राधाकृष्ण कुशवाहा

गुरुवर दें बल ज्ञान का, रहें दुर्व्यसन दूर।
कभी कुसंगति न पडूँ, होंऊँ न मद में चूर॥
आये कुछ लाये नहीं, जाये न ले जाये।
सार्थक कर उपयोग धन, पद अधिकार जो पाये॥
धन पद भौतिक क्षेत्र में, बड़े अर्थ की चीज।
किन्तु आत्मिक क्षेत्र में, दोनों हैं नाचीज॥
होत समस्या हल सदा, मंथन पाय विचार।
सरसों को कोल्हू मथे, तेल की निकले धार॥
समझें शाश्वत नियम को, चलें बचाय-बचाय।
जप माला पूजन किए, लहसुन गन्ध न जाय॥
जीव अमर है मौत यह, जीवन मरण का सेतु।
त्याग जीव घट पट चला, नव पट धारण हेतु॥

व्यवहार वीथी

बुरा मत देखो, बुरा मत सुनो, बुरा मत कहो

सद्गुरु कबीर कहते हैं—“नग पषाण जग सकल है, पारख बिरला कोय।” अर्थात् संसार में सर्वत्र गुण और दोष, अच्छाई और बुराई हैं, परन्तु इनकी परख करने वाला कोई बिरला है, जो दोष और बुराई को छोड़कर गुण और अच्छाई को ग्रहण करता है। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं—

जड़ चेतन गुण दोष मय, विश्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि विकार॥

अर्थात् ईश्वर ने संसार को गुण-दोष मय बनाया है। जो संत-सज्जन हैं वे हंसवत दूध के समान गुण-अच्छाई को ग्रहण कर लेते हैं और पानी के समान दोष, बुराई, विकार को छोड़ देते हैं। यहां प्रश्न यह नहीं है कि संसार को किसी ईश्वर ने बनाया है या संसार अपने आप अनादि-अनंत है। यहां का भाव सिर्फ इतना है कि मनुष्य को हंसवत गुणग्राही, सारग्राही होना चाहिए।

पूरा संसार न कभी दूध का धोया रहा है और न कभी कालिख या कीचड़ से लिपटा हुआ। सब समय अच्छे-बुरे, सज्जन-दुर्जन, सद्गुणी-दुर्गुणी रहे हैं, आज हैं और आगे रहेंगे। क्या लेना है, क्या नहीं लेना है, इसका निर्णय हर व्यक्ति को स्वयं करना होता है। जिसकी जैसी समझ-बुद्धि होती है, लाभ निश्चय होता है वह वही ग्रहण करता है। कहा भी गया है—जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि। इस सन्दर्भ में एक कहानी कही जाती है—

एक बार द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर और दुर्योधन को बुलाकर युधिष्ठिर से कहा कि आज शाम तक तुम्हें ऐसे लोगों की सूची बनाकर लाना है जिनमें कोई गुण-अच्छाई न हो, केवल बुराई ही बुराई हो और दुर्योधन

से कहा कि तुम्हें ऐसे लोगों की सूची बनाकर लाना है जिनमें कोई बुराई न हो केवल अच्छाई ही अच्छाई हो। शाम को लौटकर युधिष्ठिर ने कहा—गुरुदेव! मुझे एक भी आदमी ऐसा नहीं मिला जिसमें केवल बुराई ही बुराई हो। मुझे तो हर आदमी में अच्छाई दिखाई दिया। दुर्योधन ने कहा—गुरुदेव! मुझे तो हर आदमी में बुराई दिखाई दिया। एक भी आदमी ऐसा नहीं मिला जिसमें केवल अच्छाई ही अच्छाई हो।

यदि हम अच्छाई देखना चाहें तो हमें हर आदमी में अच्छाई दिख सकती है और यदि बुराई देखना चाहें तो हर आदमी में बुराई दिख सकती है। यह हम पर निर्भर करता है कि हम देखना और लेना क्या चाहते हैं। ऐसा हो सकता है कि कोई व्यक्ति अपने को मांजते-शोधते इतना मांज और शोध लिया हो कि उसके जीवन में कोई बुराई, दुर्गुण, दोष, विकार न रह गया हो किन्तु दुनिया में एक भी आदमी ऐसा नहीं मिलेगा जिसमें कोई अच्छाई-सद्गुण न हो। यहां तक बड़े से बड़े चोर-डाकू और हत्यारे में भी कोई न कोई अच्छाई और सद्गुण अवश्य होते हैं। आवश्यकता है दोष और बुराई न लेकर सद्गुण और अच्छाई लेने की। जो हम लेंगे, देखेंगे वैसा ही हमारा जीवन और जीवन का व्यवहार बनता चला जायेगा।

ऊपर कहा गया है—जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि होती है। यह केवल कहावत नहीं है किन्तु ज्वलंत हकीकत है। आप इसको इस रूप में प्रयोग करके देख सकते हैं। आपके परिचय में जो लोग हैं उनमें से किसी एक या सबके केवल दोषों और बुराइयों को देखते और सोचते जाइये, उनके दोषों-बुराइयों का चिंतन करते जाइये कुछ दिनों के बाद आपका मन उनके प्रति कटु-कठोर होता चला जायेगा, फिर आपकी वाणी से उनके लिए कटु, कठोर और निंदा के शब्द निकलना शुरू हो जायेगा और फिर आपका व्यवहार उनके लिए कटु, कठोर होता चला जायेगा और आपसी सम्बन्ध में दरार आ जायेगी। आपका जीवन नरक बन जायेगा। इसके विपरीत आप उनके सद्गुणों-अच्छाइयों को देखते-

सोचते जाइये, उनका ही चिंतन-मनन करते जाइये कुछ दिनों के बाद आपका मन उनके लिए मधुर, कोमल, विनम्र होता चला जायेगा, उनके लिए आदर-सम्मान-प्रेम बढ़ता चला जायेगा, फिर आपकी वाणी से उनके लिए स्वतः प्रेमपूर्ण मृदु-कोमल एवं प्रशंसा के शब्द निकलना शुरू हो जायेगा और फिर आपका व्यवहार उनके लिए मृदु-कोमल-प्रेमपूर्ण होता चला जायेगा। सम्बन्धों में निकटता और मिठास आ जायेगी। जीवन स्वर्ग बनता चला जायेगा।

यदि नफरत, घृणा, कटुता, द्वेष और तनाव से बचे रहकर दूसरों के लिए मन को सरल, कोमल, विनम्र बनाये रखना चाहते हैं और आपसी सम्बन्ध-व्यवहार को प्रेमपूर्ण, सौहार्दपूर्ण तथा मीठा बनाये रखना चाहते हैं तो और कुछ कर सकें या न कर सकें यह संकल्प और निश्चय अवश्य करें—न किसी के लिए बुरा सोचेंगे, न किसी का दोष देखेंगे, न किसी की निंदा-बुराई करेंगे और न किसी की निंदा-बुराई सुनेंगे। किन्तु सदा अच्छा सोचेंगे, अच्छा देखेंगे, अच्छा कहेंगे और अच्छा सुनेंगे।

पहली बात है बुरा सोचना। किसी के लिए बुरा तभी सोचा जाता है जब अपना मन बुरा होता है और जब किसी के लिए बुरा सोचा जाता है तब मन, वाणी और कर्म-व्यवहार और अधिक बुरे होते चले जाते हैं और मन, वाणी, कर्म के बुरा होने का अर्थ है जीवन का बुरा होना और जब जीवन ही बुरा हो गया तो बाकी अन्य का ठीक-अच्छा होने का क्या मतलब रह जाता है!

यदि कोई हमारे लिए बुरा सोचता है या कहता है तो इससे हमारा बुरा नहीं हो जायेगा। हमारा बुरा तो तब होगा जब हम बुरा करेंगे, किन्तु यदि हम दूसरों के लिए बुरा सोचते हैं तो उसका बुरा हो या न हो हमारा बुरा अवश्य हो जाता है। सद्गुरु श्री विशाल साहेब कहते हैं—अन्तःकरण मलिन बिन, कैसे क्रिया अबुद्ध। अर्थात् अपने अन्तःकरण को मलिन बनाये बिना कोई दूसरों के साथ गलत बात-व्यवहार कैसे कर सकता

है। यह सदैव ध्यान रखना होगा कि अपना बिगाड़-नुकसान करके ही दूसरों का बिगाड़-नुकसान किया जाता है।

किसी का भी जीवन आज जैसा है वह उसके कर्मों का ही परिणाम है और सारे कर्मों के मूल में है विचार। कर्म विचार-चिंतन का बाह्य रूप है और विचार-चिंतन कर्म का आन्तरिक रूप। कोई भी कर्म पहले विचार रूप में मन में प्रकट होता है, उसके बाद ही वह बाह्य रूप में इन्द्रियों द्वारा कार्यान्वित होता है। अतः यदि जीवन को सुन्दर बनाना है तो कर्म को सुन्दर बनाना होगा और कर्म को सुन्दर बनाना है तो विचार को, सोचने को सुन्दर बनाना होगा। इसके बिना जीवन सुन्दर, सुखद बन ही नहीं सकता।

यहां प्रसंग है किसी के लिए बुरा न सोचने का। किसी के लिए बुरा सोचने से पहले यह सोचें कि इससे आपका कौन-सा बिगाड़ा काम बन जायेगा या इससे आपको क्या फायदा होगा। अच्छा तो यह है कि दूसरों के बारे में सोचा ही न जाये और यदि बिना सोचे नहीं रहा जा सकता तो बुरा न सोचकर सदैव अच्छा ही सोचा जाये। यदि कोई सचमुच में बुरा है तो भी उसकी बुराई के बारे में न सोचकर यह सोचा जाये कि वह बुरे कर्मों और बुरे रास्ते को छोड़कर कैसे सद्कर्म, शुभकर्म और शुभ मार्ग में लगकर अपना सुधार करे, आत्मशांति, आत्मकल्याण के मार्ग में आगे बढ़े। यदि वह बुरे कर्म और बुरे रास्ते को नहीं छोड़ना चाहता, तो इसमें उसका ही नुकसान है, हमारा नहीं, फिर उसके लिए हम बुरा क्यों सोचें। हर हालत में दूसरों के लिए बुरा न सोचकर अपितु अच्छा सोचकर ही हम मानसिक तनाव, उद्वेग, अशांति से बचे रह सकते हैं।

दूसरी बात है किसी का दोष देखना। हर आदमी में अच्छाई-बुराई, गुण-दोष होते हैं, परन्तु आदमी की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति बन गयी है कि दूसरों के गुण न देख कर दोष देखना और जितना ही दूसरों के दोष देखा जाता है उतना ही उनके लिए मन कटुता, द्वेष, उद्वेग, घृणा आदि से भरता और अशांत होता चला जाता है।

पारिवारिक-सामाजिक जीवन में परस्पर जो कलह, विवाद, लड़ाई-झगड़ा, मनमुटाव आदि दिखाई पड़ते हैं उनका एक प्रमुख कारण है सामने वाले के गुणों-अच्छाइयों को न देखकर केवल उसके दोषों-बुराइयों को देखना या उसे दोष देना।

दूसरों के दोष देखने या उन्हें दोष देने से पहले हमें यह सोचना चाहिए कि कहीं वैसा ही या अन्य प्रकार के दोष-बुराई तो मुझमें नहीं हैं। यदि मुझमें भी वैसा ही या अन्य कोई दोष-बुराई है तो मैं दूसरों के दोष-बुराई देखने या दूसरों को दोष देने का अधिकारी कहां हूं। मुझे तो सबसे पहले अपने दोषों का त्याग-सुधार करना चाहिए। यदि हम अपने दोषों-बुराइयों को देखकर उन्हें दूर करने या सुधारने में लग जायें तो दूसरों के दोष-बुराई देखने का अवसर ही नहीं रह जायेगा। इस सन्दर्भ में सद्गुरु कबीर की ये साखियां अत्यंत प्रेरक और प्रासंगिक हैं—

*बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल हूंढा आपना, मुझसा बुरा न कोय॥
कबीर हम सबते बुरे, हमते भल सब कोय।
जिन ऐसा करि जानिया, मीत हमारा सोय॥*

यदि हम दूसरों की अच्छाइयों को देखना शुरू कर दें तो उनमें अनेक ऐसी अच्छाइयां दिखाई देने लगेंगी जिनकी हमने कल्पना भी नहीं की थी। यहां तक दुष्ट-दुर्जन कहे जाने वालों में भी अनेक ऐसी अच्छाइयां होती हैं जिनकी तरफ हमारी दृष्टि कभी नहीं जाती। यदि हम दूसरों के गुणों-अच्छाइयों को देखना शुरू कर दें तो उनके प्रति हमारा मन और व्यवहार मधुर और कोमल होता चला जायेगा और धीरे-धीरे उनके वे गुण और अच्छाइयां हमारे जीवन में उतरते चले जायेंगे और हमारा जीवन ऊपर उठता चला जायेगा। अतः दूसरों के दोष-बुराई न देखकर गुण-अच्छाई देखना शुरू करें।

याद रखें दूसरों के दोष-बुराई देखते-देखते अपना जीवन दोषों-बुराइयों से भरता चला जायेगा, फिर न घर में सुख से जी सकेंगे न बाहर और न कोई चीज सुख दे सकेगी। सच तो यह है कि दोषी बनकर ही दूसरों में दोष देखा जाता है। किसी ने कितना बढ़िया कहा है—

दोष दूसरों में है इस विचार में ही दोष है। अतः यदि अपने मन को सरल-शांत रखना है, जीवन को ऊपर उठाना है और साथियों-परिवारीजनों से शिकायतरहित मधुर व्यवहार बनाये रखना है तो दूसरों में दोष न देखकर गुण-अच्छाई देखना शुरू करें। यदि गुण-अच्छाई न देख सकें या न दिखाई दे तो कम से कम दोष-बुराई देखना तत्काल बंद कर दें। फूल नहीं चुन सकते तो कांटे-कंकड़ चुनना बंद कर दें। रास्ते में कांटे-कंकड़ दिखाई पड़े तो उन्हें उठाकर दूर फेंक दें जिससे वे दूसरों को चुभने न पावे।

तीसरी बात है किसी की निंदा-बुराई न करना। किसी की निंदा-बुराई करने से पहले यह सोचना चाहिए कि क्या मुझे अपनी निंदा-बुराई पसंद है और क्या मुझे अपनी निंदा-बुराई सुनकर खुशी होती है! यदि नहीं, तो यही बात सबके लिए समझना चाहिए। जिस प्रकार अपनी निंदा-बुराई सुनकर मुझे दुख होता है इसी प्रकार अपनी निंदा-बुराई सुनकर सबको दुख होता है, फिर किसी की निंदा-बुराई करके किसी को दुख क्यों पहुंचाया जाये। किसी की निंदा करना ढंकी हुई गंदगी को उघाड़कर बिखेर देना है। जरा सोचें गंदगी को ढंके रहने देना अच्छा है या उसे उघाड़कर बिखेर देना। दूसरों की निंदा करके क्या यही काम आप नहीं कर रहे हैं।

यदि कोई गलत है या गलत काम कर रहा है तो उसका फल उसे मिलेगा, उसकी निंदा करके आप अपने और दूसरे के मन-संस्कार को बिगाड़ क्यों रहे हैं। स्वयं कोई गलत काम न करें और दूसरों को भी वैसा गलत काम न करने के लिए सावधान कर दें, परन्तु निंदा किसी की न करें। किसी की व्यर्थ निंदा करना स्वयं एक गलत काम, गलत आदत है।

जहां तक संभव हो दूसरों की चर्चा करने से बचें। यदि दूसरों की चर्चा करनी ही हो तो गलत चर्चा न कर अच्छी चर्चा करें, निंदा न कर प्रशंसा करें। दूसरों की निंदा-बुराई करने में जिस अनमोल समय-शक्ति का दुरुपयोग कर रहे हैं उसी समय-शक्ति को कोई अच्छा काम, आत्मकल्याण-लोककल्याण के काम में लगायें। एक बात सदैव याद रखें—दूसरों की निंदा-बुराई वही

करता है जिसके पास करने को कोई अच्छा काम नहीं होता।

पूज्य गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी कहा करते थे कि निंदक बिना नाक का सूअर है। जिस प्रकार सूअर हर जगह गंदगी खोजता फिरता है उसी प्रकार निंदक हर आदमी में बुराई-दोष ढूंढता फिरता है और उसी का भक्षण-वितरण करता रहता है। धीरे-धीरे निंदक व्यक्ति सबके दिल से उतर जाता है। कोई उसके साथ सम्बन्ध व्यवहार नहीं रखना चाहता है। किसी की निंदा करना अपने मन को तो बिगाड़ना है ही समाज के वातावरण को भी दूषित करना है। चाहे आप किसी की निंदा करें चाहे प्रशंसा करें दोनों में बराबर समय-शक्ति लगाना है। अतः जितना बन सके दूसरों की प्रशंसा करें। यदि प्रशंसा नहीं कर सकते तो कम से कम निंदा करना तो सर्वथा छोड़ ही दें।

चौथी बात है किसी की निंदा-बुराई न सुनना। आप नहीं चाहते कि किसी के घर की गंदगी आपके घर में आये या गंदा पानी आपके दरवाजा के सामने से बहे तब आप दूसरों की निंदा-बुराई सुनने में रस क्यों ले रहे हैं, क्यों प्रेम से सुन रहे हैं। किसी की निंदा-बुराई सुनने में रस लेना दूसरों के घर की गंदगी अपने घर में लाने के समान ही है।

ध्यान रखें दूसरों की निंदा-बुराई रसपूर्वक तभी सुना जाता है जब अपना मन गंदा-मलिन रहता है और दूसरों की निंदा-बुराई सुनकर उसे और गंदा-मलिन बना लिया जाता है। और एक अच्छे-भले आदमी के लिए अपने मन में गलत ख्याल कर उसे दोषी मान लिया जाता है। जिसमें केवल अपना ही नुकसान होता है। निंदक की बातों पर विश्वास करने से धोखा ही खाना होगा। इसलिए किसी की निंदा सुनना आज और अभी से छोड़ दें। यदि कोई आपके पास किसी की निंदा कर रहा है तो उससे कह दें कि मुझे इन बातों की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि आपको कोई बात ही कहनी है तो कोई दूसरी बात कहें।

स्वयं न तो किसी की निंदा-बुराई करें, और न किसी की निंदा-बुराई सुनें। हम जैसा कहते-सुनते हैं,

धीरे-धीरे हमारा जीवन वैसा ही बनता चला जाता है। इसलिए अच्छी बात कहें और अच्छी बात ही सुनें। अपनी प्रशंसा और दूसरों की निंदा करना तथा अपनी प्रशंसा और दूसरों की निंदा सुनने में आनंद मानना अपने पतन और दुख का ही कारण बनता है।

अतः यदि मानसिक अशांति-क्लेश, पीड़ा, उद्वेग, द्वेष, तनाव आदि से बचे रहना चाहते हैं और आपसी सम्बन्ध व्यवहार को प्रेमपूर्ण-मधुर बनाये रखना चाहते हैं तो दूसरों के लिए बुरा सोचना, दूसरों में दोष देखना, दूसरों की निंदा-बुराई करना और दूसरों की निंदा-बुराई सुनना इन चार बातों का सर्वथा त्याग कर दें। इसके विपरीत दूसरों के लिए अच्छा सोचना, दूसरों में गुण-अच्छाई देखना, दूसरों की प्रशंसा करना और दूसरों की प्रशंसा सुनना शुरू कर दें। अच्छा सोचना, अच्छा देखना, अच्छा कहना और अच्छा सुनना व्यावहारिक मधुरता के लिए जितना आवश्यक है उतना ही आध्यात्मिक उन्नति के लिए भी आवश्यक है। क्योंकि व्यावहारिक जीवन को प्रेमपूर्ण मधुर-सुखद और सरल बनाये बिना कोई भी व्यक्ति आध्यात्मिक उन्नति नहीं कर सकता।

—धर्मेन्द्र दास

- ✦ सुनने की आदत डालें क्योंकि ताना मारने वालों की कमी नहीं है।
- ✦ मुस्कुराने की आदत डालें क्योंकि रुलाने वालों की कमी नहीं है।
- ✦ ऊपर उठने की आदत डालें क्योंकि टांग खींचने वालों की कमी नहीं है।
- ✦ प्रोत्साहित करने की आदत डालें क्योंकि हतोत्साहित करने वालों की कमी नहीं है।
- ✦ ध्यान रखें, छोटी-छोटी बातें दिल में रखने से बड़े-बड़े रिश्ते कमजोर हो जाते हैं।
- ✦ ध्यान रखें, निंदा उसी की होती है जो जिंदा है, मरने के बाद तो सिर्फ तारीफ होती है।

प्रस्तुति-हीरेन्द्र दास

दो दृष्टिकोण

लेखक—विवेकदास

जब से इस भूतल पर सभ्यता का विकास हुआ है, दो तरह के लोग होते आये हैं। एक तो विश्वासवादी और दूसरे विवेकवादी। विश्वासवादी प्रकृति की हर घटना में किसी अलौकिक शक्ति का हाथ देखते हैं। जैसे ऋतु परिवर्तन होना, ग्रह-नक्षत्रों का घूमना, दिन-रात का होना, फूलों का खिलना, फलों का आना, जन्म-मृत्यु का होना। इसी प्रकार प्रकृति में जो भी घटित होता है किसी विशेष ईश्वरीय शक्ति द्वारा होता है। उसके बिना गति, स्फूर्ण और संचालन संभव ही नहीं है।

तो दूसरी तरफ विवेकवादी दृष्टिकोण वालों के अनुसार प्रकृति की प्रत्येक घटना के पीछे एक कारण-कार्य की व्यवस्था है। इसका संचालन कोई दूसरी शक्ति नहीं करती, अपितु जड़-चेतन के अपने-अपने स्वाभाविक गुण-धर्म हैं, जिससे यह जगत स्वतः प्रवहमान है। इस पर किसी अलौकिक शक्ति की सत्ता मानना निराश्रम है।

दोनों का अपना-अपना तर्क है, अपना विश्वास है। अलौकिक सत्ता है या नहीं यह अलग बात है किन्तु इस प्रकार की बातें होती रही हैं और उसके मानने वाले लोग भी सदैव से रहे हैं और सदैव रहेंगे। मेरा उद्देश्य यहां ईश्वरीय शक्ति है या नहीं है यह विश्लेषण करना नहीं है, अपितु इस प्रकार की मान्यता से समाज को क्या फायदा और नुकसान हो रहा है इस पर विचार करना है।

सभ्यता के उषाकाल में प्रकृति की विशालता को देखकर, उनकी घटनाओं को देखकर लोग आश्चर्य में पड़ जाते थे। सोचने लगते यह विशाल संसार कैसे बन गया? इसको किसी ने बनाया होगा कि यह स्वतः बन गया है? ऋतु परिवर्तन कैसे हो जाते हैं? पानी कैसे बरसता है? फूल कैसे खिल जाते हैं? इनमें रंग कौन भरता है? गंध कैसे आ जाती है? हिरण के सींग को कौन ऐंठ देता है? इतने सुन्दर मनुष्य शरीर की रचना कैसे हो जाती है? इतनी सुन्दर-सुन्दर आंखें कैसे बन

गयीं? यह सामने है, पीछे क्यों नहीं हो गयी? हवा कैसे चलती है, कभी तेज तो कभी मंद कैसे हो जाती है? आदि असंख्य सवाल मनुष्य के मन में खड़े हुए। जब इसका समाधान अपनी बुद्धिबल से नहीं कर पाया तो सोचा जरूर इसका कोई बनाने और चलाने वाला होगा। इस संसार की प्राचीनतम पुस्तक वेद है इसमें इस तरह की बातें आयी हैं। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में एक उलझी हुई धुंधली कल्पना है।

“उस समय असत नहीं था, न ही सत ही था। न पृथ्वी थी न उसके ऊपर आकाश था। आवरण भी कहां था? किसका स्थान कहां था? क्या गहन गंभीर जल था ॥ 1 ॥ उस समय न मृत्यु थी और न अमरता थी, रात और दिन का भेद नहीं था। वह एक निर्वात अपने स्वभाव में स्थित था उसके अलावा कुछ नहीं था ॥ 2 ॥ उस समय अंधकार से अंधकार ढका था अर्थात् सर्वत्र अंधकार था। और यह सब जलमय था। एक अंकुर था जो त्विष (भूसी) से ढका था, वह तमस (उष्मा) की शक्ति से पैदा हुआ था ॥ 3 ॥ पहले काम उत्पन्न हुआ और मन से वीर्य पैदा हुआ। मनीषी कविगण अपने हृदय में विचारकर असत के साथ सत के बंधन का पता लगाये ॥ 4 ॥ उसकी किरणें जो सर्वत्र फैली थीं, ऊपर थीं कि नीचे? वीर्य (बीज) को धारण करने वाले थे और महिमार्थे (शक्तियां) भी थीं। आत्मशक्ति नीचे थी और इच्छाशक्ति ऊपर थी ॥ 5 ॥ यह सृष्टि कहां से आयी, कैसे बनी, इसे कौन निस्संदेह जानता है और कौन इसकी निर्भ्रान्त घोषणा कर सकता है? देवता लोग भी तो सृष्टि होने के बाद ही पैदा हुए हैं, फिर कौन जानता है कि सृष्टि कहां से हुई? ॥ 6 ॥ ये सृष्टियां कहां से हुई, किसने पैदा की, किसने नहीं पैदा की— यह सब वही जानता होगा जो इसका अध्यक्ष अंतरिक्ष में स्थित है और हो सकता है वह भी यह सब न जानता हो ॥ 7 ॥”¹

1. ऋग्वेद, मंडल 10, सूक्त 129 (वेद क्या कहते हैं?) पूज्य गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी।

ऋग्वेद के ऋषि और भी कहते हैं—

“जो यह अपार्थिव प्रकृति पार्थिव विश्व-प्रपंच को अपने में धारण कर निरंतर गतिशील है, उसको प्रथम उत्पन्न होते किसने देखा है? यह तो समझ आता है कि भूमि से, जड़-प्रकृति से प्राण-सूक्ष्म शरीर और रक्तादि युक्त स्थूल शरीर पैदा हो गये, परंतु आत्मा जो चेतन है वह 'क्व स्वित्' कहां से आ गया यह बात पूछने के लिए कौन व्यक्ति विद्वान के पास जायेगा?”¹

इसी प्रकार बाद में अनेक मतों में सृष्टि के सम्बन्ध में कल्पना की गई है। कोई किसी ढंग से सृष्टि होना मानता है तो कोई किसी ढंग से। सबका अपना अलग-अलग मत है। कुछेक मतों को छोड़कर लगभग सभी मत-पंथों में सृष्टि रचनाकार किसी अलौकिक सत्ता की कल्पना है और कहा गया है वही इसका नियामक और व्यवस्थापक है। वह चाहे तो सब कुछ समाप्त कर सकता है और चाहे तो सब कुछ ठीक भी कर सकता है। हिन्दू परंपरा में तो अनेक देवी-देवताओं की कल्पना की गयी है लेकिन सृष्टि क्रम को समझने के लिए त्रिदेव की कल्पना है—ब्रह्मा, विष्णु और महेश। इसमें ब्रह्मा सृष्टि रचयिता के रूप में, विष्णु पालनकर्ता के रूप में और महेश संहारकर्ता के रूप में हैं। इनमें तीनों को तीन गुण का प्रतिनिधि माना गया है—ब्रह्मा रजोगुण, विष्णु सतोगुण और महेश तमोगुण का।

जो जैसा होता है वैसा ही ईश्वर या देव की कल्पना करता है। यदि कोई सात्त्विक है तो उसका देव भी सात्त्विक है। यदि कोई रजोगुणी है तो उसका देव या ईश्वर भी रजोगुणी है और कोई तमोगुणी है तो उसका ईश्वर भी तमोगुणी है। यदि कोई मांस-मदिरा खाने-पीने वाला है तो उसका ईश्वर भी मांस-मदिरा खाने-पीने वाला है। किसी-किसी परंपरा में तो ईश्वर और परमात्मा के नाम पर मूक प्राणियों की बलि और कुर्बानी दी जाती है तो कहीं-कहीं आज के युग में भी

अपने देव या ईश्वर को खुश करने के लिए मनुष्य तक को काट दिया जाता है।

भावना या विश्वास तब तक उचित माना जा सकता है, जब तक उससे किसी को हानि न होती हो। आप अपनी मान्यता के लिए, विश्वास के लिए स्वतंत्र हैं। आप कुछ भी मान्यता या विश्वास रख सकते हैं, उससे लाभ होगा तो आपका और हानि होगी तो आपकी। किन्तु इस मान्यता या विश्वास के पक्ष में पड़कर किसी दूसरे को हानि पहुंचाने लगते हैं, भला-बुरा कहने लगते हैं तो यह कथमपि उचित नहीं हो सकता। दुर्भाग्य से यह आज बहुत ज्यादा बढ़ रहा है। पहले भी होता रहा है; एक मान्यता वालों ने दूसरे मान्यता वालों का कत्लेआम किया है। उन्हें नास्तिक और काफिर कहा गया, उन्हें नरकगामी होने का फतवा दिया गया। लेकिन आज और बढ़ रहा है।

कुछ सिरफिरे किस्म के लोग अपने को ईश्वर का ठेकेदार मान बैठे हैं, और दूसरों पर अत्याचार कर रहे हैं। धर्म और ईश्वर की आड़ में लोगों को छल रहे हैं। गुमराह कर रहे हैं। यहां तक हिंसा-हत्या करने में भी बाज नहीं आ रहे हैं। ऐसे लोग खुद तो अपनी हानि करते ही हैं, लाखों और करोड़ों लोगों की भावनाओं के साथ खिलवाड़ भी करते हैं। जिसके परिणाम में उनका आज का जीवन तो संतापित और दुःखित होना ही है, उनका भविष्य भी अंधकारमय ही है।

मुझे तो आज तक यह समझ नहीं आया कि एक ईश्वर में आस्था रखने वाला व्यक्ति दूसरे को क्षति कैसे पहुंचा सकता है? किसी भी ईश्वर को मानने वाले व्यक्ति से पूछो कि ईश्वर कहां है, तो सभी का एक ही उत्तर होता है, सब जगह है, कण कण में है या जर्-जर् में है। जब कण-कण में ईश्वर है, जर्-जर् में खुदा है तो किसी के साथ हिंसा, हत्या या गलत व्यवहार कैसे किया जा सकता है? ईश्वर को मानना और हिंसा-हत्या का व्यवहार करना ईश्वर का मखौल उड़ाना है?

ईश्वर के लिए तीन प्रकार की बात कही जाती है। वह सर्वशक्तिमान है, सब जगह है और सब कुछ

1. को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति।
भूम्याअसुरसृगात्मा क्व स्वित् को विद्वांसमुप गात् प्रष्टुमेतत् ॥
ऋग्वेद ॥ 1/64/4 ॥ (वेद क्या कहते हैं।)

जानता है। अब आप विचारिये; आप किसी के साथ छल-छद्म करते हैं, किसी के साथ हिंसा-हत्या का व्यवहार करते हैं, किसी के साथ अनैतिक काम करते हैं, तो वहां वह ईश्वर या खुदा मौजूद है और तुम्हारे कर्म को जानता भी है। और उसका फल भी देने वाला है फिर भी आप गलत करते हैं तो क्या यह उसकी उपेक्षा नहीं है? उसकी अवमानना नहीं है। “अपने मुख की वार्ता सुने न अपने कान” वाली बात चरितार्थ हो रही है।

आज जितने भी हिंसा, हत्या और आतंक फैलाने वाले लोग हैं वे कोई अनीश्वरवादी या भौतिकवादी लोग नहीं हैं? किन्तु किसी-न-किसी रूप में ईश्वर में आस्था रखने वाले लोग हैं। अपने आप को धार्मिक मानने वाले लोग हैं। आश्चर्य होता है ऐसे लोगों की करतूतों को देखकर। इसके विपरीत जितने भी निरीश्वरवादी मत हैं वे कभी भी धर्म के नाम पर किसी का खून नहीं बहाये, मानवता को कलंकित नहीं किये। बल्कि सत्य, अहिंसा और प्रेम का संदेश दिये। मानवता का सम्मान किये।

मैं यदि ईश्वर को मानता हूँ और कोई उसे नहीं मानता तो वह मेरा दुश्मन कैसे हो जाता है? मैं अलग ढंग से ईश्वर को मानता हूँ, मेरी पूजा या प्रार्थना पद्धति अलग है। और दूसरा अलग ढंग से मानता है और उसकी प्रार्थना पद्धति अलग है। तो क्या वह मेरा दुश्मन हो गया? कोई माने या न माने मैं तो मानता हूँ, कोई प्रार्थना करे या न करे मैं तो प्रार्थना करता हूँ। यदि मेरी प्रार्थना पद्धति सही है, मेरी मान्यता सही है और औरों की गलत है तो ईश्वर जाने, और उसको सुधारे। मैं कौन होता हूँ उसमें हस्तक्षेप करने वाला। जब वह सब कुछ जानता है और सब कुछ कर सकता है तो वो करे न।

आजकल बड़े-बड़े गुरु घंटाल लोग जो ईश्वर की दुहाई देते फिरते हैं या खुद को ईश्वर का अवतार बताकर समाज में घूमते हैं, उनकी दशा देखिये। एक सामान्य व्यक्ति से भी बदतर स्थिति होती है। ऐसा कोई

भी दुष्कर्म नहीं होगा जो वे नहीं करते होंगे। हिंसा-हत्या, बलात्कार, चोरी, गबन, स्मगलिंग सब कुछ कर रहे हैं। क्या यह एक प्रकार से ईश्वरवाद का मखौल नहीं है। ईश्वर बिचारा कहीं बैठा यह सब देख रहा है और कुछ कर भी नहीं पा रहा है। लोग एक तरफ तो अपने को ईश्वर का अवतार भी बता रहे हैं और दूसरी तरफ अनैतिकता में डुबे हुए भी हैं तो इसे क्या कहा जाये? यदि ये ईश्वरीय कर्म हैं तो शैतानी कर्म क्या हो सकते हैं?

जो अपने को ईश्वर का अवतार बताकर या भक्त बताकर अनैतिक काम हिंसा-हत्या आदि कर रहे हैं, धर्म और ईश्वर-खुदा के नाम से दहशतगर्दी फैला रहे हैं, वास्तव में न तो वे धार्मिक हैं और न ही उनका ईश्वर-खुदा से कोई वास्ता है। बल्कि ईश्वर-खुदा के नाम पर ये अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं। अपना स्वार्थ साध रहे हैं।

सामने जो मनुष्य और प्राणी हैं, उनके साथ हिंसा-हत्या का व्यवहार करना और दूसरी तरफ जिसे कभी देखा नहीं उस अदृश्य ईश्वर का गीत गाना कितना भोलापन है। यदि किसी की ईश्वर में आस्था है तो इसमें कुछ भी बुरा नहीं है। किन्तु आप समझिये जब ईश्वर सब जगह है, सब कुछ जानता है और सब कुछ कर सकता है तो हम जो कुछ भी अन्यथा करते हैं, और जहां भी करते हैं वह तो सब जान रहा है, और हमें उसका परिणाम देगा। तो फिर हम अन्यथा कैसे कर सकते हैं !

इलाहाबाद कुंभ मेले की घटना है, एक बड़े प्रतिष्ठित महात्मा जी से हम लोग मुलाकात करने गये। नमस्कार किये और बैठ गये। कुछ सामान्य चर्चा के पश्चात मैंने उनसे विनम्रता से पूछा—महाराजजी, ईश्वर का बड़ा हो हल्ला है, वास्तव में ईश्वर क्या है? तो उन्होंने बड़ी सहजता के साथ कहा—महाराज, ईश्वर और कुछ नहीं एक प्रकार से हौवा है। मैंने कहा—“मतलब मैं समझा नहीं।” उन्होंने कहा—“जैसे बच्चा परेशान करता है तो मां उसे डराती है कि देख तू

परेशान मत कर, नहीं तो बाबा या भूत पकड़कर ले जायेगा। और बच्चा परेशान करना, रोना बंद कर देता है। ऐसे ही लोगों को गलत कर्मों से बचाने के लिए ईश्वर एक हौवा है।”

यदि कोई इस प्रकार की भावना से भावित है तो लाभ ही है क्योंकि अन्यथा उससे कुछ न होगा बल्कि जो होगा अच्छा और शुभ होगा। यदि हम ईश्वर की मान्यता को सकारात्मक दृष्टि से देखें तो अनेक लाभ हो सकते हैं—

1. ईश्वर की मान्यता रखने वालों की गलत कर्मों में प्रवृत्ति नहीं हो सकती क्योंकि ईश्वर सर्वत्र और सर्वशक्तिमान है। फलतः सत्कर्मों में प्रवृत्ति होगी।

2. संतोष वृत्ति धारण करके आदमी सुखी होगा। सुख और दुख, हानि और लाभ की स्थिति में वह प्रभु इच्छा देखेगा।

3. शिकायत समाप्त हो जायेगी, क्योंकि जो होता है, प्रभु इच्छा से होता है। कष्ट की स्थिति भी आती है, तो ईश्वर-भक्त सोचता है, लगता है प्रभु मेरी परीक्षा ले रहा है।

4. जब ईश्वर शुद्ध-बुद्ध निर्मल और मुक्तस्वरूप है तो उसकी आराधना और भक्ति करके हम समस्त जीव भी मुक्त हो सकते हैं।

5. ईश्वर की बनायी सारी सृष्टि है तो फिर एक सच्चा ईश्वर भक्त कभी प्रकृति के प्राणी और पदार्थ को क्षति नहीं पहुंचा सकता अपितु यथासंभव सुरक्षा प्रदान करने की कोशिश करेगा।

ईश्वर की मान्यता रखने से कुछ हानियां भी हैं—

1. यदि ईश्वर के प्रति भक्ति अंध भक्ति में बदल जाये तो आदमी दूसरों को काफिर और नास्तिक कहने लगेगा और कहना चाहिए एक प्रकार से मानवता का अपमान करेगा। जैसा कि आज हो रहा है। मेरे अनुसार जो नहीं मानता उसके प्रति क्रूरता का व्यवहार हो सकता है।

2. ईश्वर का नाम लेकर आदमी अकर्मण्य और आलसी हो जाता है। यह दोहा बड़ा ही प्रसिद्ध है—

अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।

दास मलुका कह गये, सबका दाता राम॥

ईश्वर में अंध आस्था वालों की अपेक्षा ईश्वर में आस्था न रखने वालों ने ही भौतिक विकास अधिक किया है।

3. ईश्वर के नाम पर सामान्य लोगों को बेवकूफ बनाकर शोषण किया जाता है जो कि आज किसी से छुपा नहीं है।

4. ईश्वर की मान्यता रखकर आदमी अपनी महत्ता और गरिमा को भुला देता है। वह समझता है, जो है, ऊपर वाला ही है। हम तो नाचीज हैं, कठपुतली हैं, अल्पज्ञ हैं, तुच्छ हैं और न जाने क्या-क्या हैं।

दूसरी विचारधारा है विवेकवादी। इसके दृष्टिकोण से प्रकृति की हर घटना और हर क्रिया कलाप में एक कारण-कार्य की व्यवस्था है। जो कुछ भी होता है उसके पीछे प्रकृति का अटूट नियम है। जिसे वेद की भाषा में ऋत, चीन के संत लाओत्जे की भाषा में ताओ, सामान्य भाषा में प्रकृति के नियम और आज की भाषा में विश्व के शाश्वत नियम कहते हैं। यह नियम स्वतः है। इसका नियामक कोई ईश्वरीय सत्ता नहीं है। मनुष्य ही अपने कर्मों का कर्ता और विधाता है। वह किसी की प्रेरणा से कर्म नहीं करता बल्कि अपनी इच्छा से करता है।

उपनिषद् के ऋषि कहते हैं—“यह जीव जैसी इच्छा करता है वैसे प्रयत्न करता है और जैसा प्रयत्न करता है, वैसा कर्म करता है, और जैसा कर्म करता है वैसा फल पाता है।”¹ और भी कहा है—“ईश्वर न किसी में कर्तृत्व उत्पन्न करता है, न किसी के लिए कर्म करता है और न कर्मों का फल ही देता है अपितु यह सब स्वभाव से ही होता है।”²

कबीर साहेब की प्रसिद्ध साखी है—

कबीर कमाई आपनी, निष्फल कभी न जाय।

बोया पेड़ बबूल का, आम कहां ते खाय॥

(साखी ग्रंथ)

1. यथा कामो भवति तत्क्रतुर्भवति यत्क्रतुर्भवति तत्कर्म कुरुते यत्कर्म कुरुते तदभिसंपद्यते ॥ बृहदारण्यक उपनिषद् 4/4/5 ॥

2. न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सुजति प्रभुः।
न कर्मफल संयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥ गीता 5/14 ॥

आपन आस कीजै बहु तेरा, काहू न मर्म पावल हरि केरा ॥

(बीजक, शब्द 76)

विवेकवादी विचारधारा का स्वर वेद से लेकर सभी शास्त्रों में थोड़े-बहुत रूप में आया है किन्तु बुद्ध, महावीर, कपिल, कबीर और अनेक संतों ने इस पर जोर दिया है और मनुष्य को खुद पर आशा-भरोसा रखकर अपने कर्तव्य सुधार और सत्कर्म करने की प्रेरणा दी है। इतिहास साक्षी है जिस परंपरा ने विवेकवाद पर जोर दिया और चला है, कभी भी धर्म के नाम पर खून खराबा नहीं किया। बल्कि मानवता के उत्थान के लिए एक आदर्श प्रस्तुत किया है। विवेकवादी दृष्टिकोण वाले भले ही ईश्वर न मानते हों, किन्तु वे कर्म सिद्धान्त को एक सिरे से स्वीकार करते हैं और उनका पूरा विश्वास होता है कि कर्म सुधार कर ही दुखों से मुक्त हुआ जा सकता है।

विवेकवादी दृष्टिकोण से लाभ—

1. मनुष्य व्यर्थ की कल्पनाओं से बचता है। सुख और दुख का कारण किसी और को न मानकर स्वयं को समझता है, फलतः कर्म सुधार पर ध्यान देता है।

2. विवेकवादी दृष्टिकोण प्राणीमात्र के प्रति दया और करुणा की भावना को बल देता है। जैसे मुझे सुख-दुख होते हैं, वैसे सभी को होते हैं फिर अन्यो के प्रति हिंसा और क्रूरता का व्यवहार कैसे कर सकता हूँ। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को बल मिलता है।

3. इससे व्यक्ति का स्वाभिमान जागृत होता है क्योंकि वह अपनी जिम्मेदारी स्वीकारता है।

4. विवेकवादी व्यक्ति अतिक्रमण से बचता है। वह जो भी करता है विचारपूर्वक करता है इसीलिए वह किसी के लिए मुसीबत नहीं बनाता बल्कि समाज के उत्थान में सहयोग प्रदान करता है।

कुछ लोग आजकल विवेकवाद के नाम पर जो उच्छृंखलता अपना रहे हैं और भौतिकवाद को बल दे रहे हैं वह गलत है। ऐसे लोग न इधर के होते हैं और न उधर के। नैतिकता को समझना और उसके अनुसार चलना और जहां तक हो सके यथासंभव किसी के

लिए समस्या खड़ी न करना बल्कि सेवा और सद्भाव रखना वास्तव में यही विवेकवाद है।

चाहे विवेकवादी दृष्टिकोण हो या विश्वासवादी सभी अपनी मान्यता और भावना के लिए स्वतंत्र हैं, किन्तु यदि अपनी भावना और विचार के मूल को अच्छी तरह समझें और उसपर चिंतन करें तो मानवता के साथ कहीं भी अन्याय नहीं कर सकते क्योंकि न इसके लिए विवेकवाद अनुमति देता है और न ही ईश्वरवाद। ये दोनों विचारधारा सदा से रही हैं और सदा रहेंगी क्योंकि संसार में दोनों प्रकार के लोग होते रहे हैं और होते रहेंगे। कोई भी विचार तभी तक उचित है जब तक उससे मानवता की क्षति न हो। चाहे हम किसी भी विचार के मानने वाले हों हमारा ध्येय अपने सुख-शांति के साथ मानवता के लिए मार्ग प्रशस्त करना होना चाहिए। हमें प्राणीमात्र के प्रति सद्भाव और प्रेम को बल देना चाहिए न कि किसी के लिए मुसीबत खड़ा करना। □

दर्शन तेरा पाकर

रचयिता—साध्वी संतुष्टि

गुरुवर तेरी कृपा से, निज को मैंने पाया।
कर दूँ समर्पित खुद को, अवसर आज है आया ॥
तेरी वाणी ने हिये में, ज्ञान दीप जलाया।
जब जान गयी सच्चाई, पल एक चैन न आया ॥
किस्मत की आंधी में, जूझते मैं तुम तक आया ॥
तुम न मिलते इस जीवन में, जाने कहां मैं होता।
तेरे बिना ये जीवन सूना, कोई बहार न होता ॥
तेरे ज्ञान की बातों ने है, हिम्मत मुझे जगाया ॥
धन्य हुआ यह जीवन गुरुवर, दर्शन तेरा पाकर।
भूल गया था मैं स्वयं को, इस दुनिया में आकर ॥
अपने ज्ञान यान पे बिठा के, तुमने दिया सहारा ॥
संतुष्टि की एक ही अर्जी, अपने चरणों में रखना।
इस अनाथ की भूलों को, क्षमा सदा ही करना ॥
संसार की माया से गुरुवर, तुमने ही मुझे बचाया ॥

धोखा

लेखक—श्री भावसिंह हिरवानी

सेठ बनवारी लाल के पास वह सब था जिसकी चाहत एक सांसारिक व्यक्ति को होती है। खुशहाल संपन्न भरा पूरा परिवार, जिसमें जीवन संगिनी के साथ तीन-तीन बेटे एवं बहुएं और उनके बच्चे। सबके सब आज्ञाकारी और सेवापरायण। बहुत बड़े मकान में सब एक साथ रहते। तीनों अलग-अलग बड़ी-बड़ी दुकानों के मालिक थे जिनसे अच्छी आमदनी हो जाती थी। कुछ खेती-बाड़ी के अलावा, दो मकानों को किराये पर उठा रखा था। इस तरह उनके ऊपर लक्ष्मी की भरपूर कृपादृष्टि बनी हुई थी। बेटे-बहू अक्सर कहा करते, “पापा जी, अब आप दुनियादारी छोड़िये और भगवान का भजन करिये।”

जब वे एकांत में होते अपने अतीत और वर्तमान को सोचकर फूले नहीं समाते। उनके पिता विरासत में मनिहारी की एक छोटी-सी दुकान सौंपकर चल बसे थे, जिसमें उनके गुजारे भर की कमाई हो जाती थी। धीरे-धीरे उन्होंने अपनी लगन एवं मेहनत से खूब धन कमाया और नगर के प्रतिष्ठित व्यवसायी बन गये। किन्तु इतना सब होते हुए भी कई बार उन्हें लगता था कि वे भीतर से एकदम खाली हैं।

बनवारी लाल ने अपनी मनःस्थिति का जिक्र अपने एक मित्र से किया तो उन्होंने सुझाव दिया कि आप किसी साधु-संत से मिलें क्योंकि आपने तो अपने जीवन में खूब उन्नति की है। धन-संपत्ति तथा घर-परिवार से भी संपन्न हैं। आपको तो परम सुखी होना चाहिए।

बनवारी लाल को बात जंच गयी। ढूंढते-ढूंढते वे एक संत के पास पहुंचे और अपनी परेशानी बताये। सेठ की बातें सुन उस संत ने कहा, “आप धोखे में हैं कि आपने जीवन में खूब उन्नति की। परिवार बढ़ गया तो परिवार की उन्नति हुई। धन बढ़ गया तो धन की

सत्संग एक सहारा है

रचयिता— ब्रह्मचारी रामलाल

जो कुछ है बाहर सब जड़ का पसारा है।
जिसमें मोह करता रे बावरे वो हमारा न तुम्हारा है॥
विजाति में आसक्त होकर फिरता मारा मारा है।
आजकल में गिरेगी इमारत हाड़ चाम का गारा है॥
है जिसको सच माना जिसका किया इतबारा है।
बनती बिगड़ती रहती चीजें परिवर्तनशील संसारा है॥
भान उगते ही छिप जाते ज्यों तारा है।
ज्ञान उदय होते ही त्यों मिट जाता अंधियारा है॥
चेतन जड़ से पृथक सदा गुण तीन से पारा है।
द्रष्टा ज्ञाता पुरुष, दृश्य ज्ञेय प्रकृति से च्यारा है॥
चलो करें सत्संग सदगुरुदेव ने पुकारा है।
सच्चा बोध होता वहां बहती अमृत धारा है॥
ज्ञान भक्ति वैराग्य में जीवन जो गुजारा है।
दिन रैन सुख शांति बढ़ते अरु विवेक विचारा है॥
निज दोषों को दूर कर खुद को जिसने सुधारा है।
उसी ने अपना जीवन सजाया और संवारा है॥
भटके जनों को राह हेतु सत्संग एक सहारा है।
मन वाणी कर्म सुधार करो गुरु संतों का नारा है॥

उन्नति हुई। मकान बढ़ गया तो मकान की उन्नति हुई। जीवन भर बाह्य प्राणी-पदार्थों के लिए दौड़ते रहे तो उनकी उन्नति हुई। आपकी उन्नति कहां हुई? मनुष्य की उन्नति तो तब है जब उसके भीतर के दुर्गुण घटे, प्राणी-पदार्थों की आसक्ति कम हो और सदगुण बढ़े। ऐसी दशा में इंसान संतुष्ट और सुखी हो जाता है तथा भौतिक रूप से कंगाल होते हुए भी परमानंद की अनुभूति से सराबोर होता है, फिर उसे किसी चीज की चाह नहीं होती। यही जीवन की सबसे बड़ी उन्नति है।”

सेठ बनवारी लाल संत की बातें सुन भौचक्के रह गये। क्षण भर के लिए वे सोच में डूब गये थे, तो क्या वे जीवन भर धोखे में ही जीते रहे। □

परमार्थ पथ

सद्गुरु ज्ञान ठिकाना है

यदि तुम्हारे मन में दुख तथा असंतोष है तो उसकी जड़ में तुम्हारे मन की लौकिक इच्छा और अहंकार है। यह कारण-कार्य की व्यवस्था है। बिना इच्छा और अहंकार के मन में दुख पैदा ही नहीं होगा। अतएव दुख से बचने के लिए यह सरल उपाय है कि अपने मन को देखते रहो। उसमें इच्छा और अहंकार न पनपने पावे। एक बार सारी इच्छाएं मर गयीं और अहंकार मिट गया, तो असावधानी न बरतो कि अब मन पर विजय हो गयी। पुनः इच्छा जग सकती है, अहंकार उदय हो सकता है। अतएव जीवन पर्यंत सावधान रहना है, अपने मन को देखते रहना है। “इच्छा जहर स्वरूप है, चाखत माते जीव। मृतक होय निजबोध से, न्यारा रहे सो शीव॥” यह विशालदेव का वचन है।

सब कुछ चित्त से उतारकर अपने आप में लीन एवं शांत रहना सबसे बड़ी स्थिति है। अंततः मेरे साथ कुछ नहीं रहेगा। मैं के अतिरिक्त मेरे साथ कुछ रहने वाला नहीं है। इसलिए बोधवान बाहरी वस्तुओं के लिए आग्रह नहीं करते हैं। सहज जीवन-निर्वाह हो जाये बस, बहुत है। उसमें सहज ही जितनी सुविधा मिल सके उतना ठीक है। सांसारिक वस्तुओं का अधिक आग्रह बोधवान नहीं करते। जीवन हवा के झोंके के समान भागा जा रहा है। कौन किसके साथ है! सारा साथ नकली है, क्षणिक है। जिस विधि से जीव का उद्धार हो, वह काम करना चाहिए। उद्धार है मन का सांसारिकता से हटकर स्वरूपलीन रहना। जीवन में शिकायत न रह जाना इसकी पहचान है।

समाधि महासुख है। सुषुप्ति अवस्था-जन्य समाधि है। उसमें भी सुख रहता है, परंतु जग जाने पर दुख शुरू हो जाता है। मृत्यु महासमाधि है। उसमें भी दुख नहीं रहता, किंतु यदि शरीर में रहते-रहते अविद्या की निवृत्ति नहीं हुई है, तो मृत्यु के बाद पुनः वासना-वश देह धरकर दुख भोगना है। अतएव दुख की अत्यंत निवृत्ति समाधि में है जो ज्ञान और सही स्थिति का फल है। कुछ न सोचना समाधि है। मेरे स्वरूप में मन नहीं है, तन नहीं है और संसार नहीं है। मन को पूर्ण शांत कर देने पर तन और संसार भी शांत हो जाता है। मेरे में मेरे अलावा कोई वस्तु नहीं है। अतएव केवल मैं मात्र रह जाना समाधि है।

दूसरे लोग कैसे हैं, दूर के लोग और निकट के लोग कैसे हैं; इसकी अपेक्षा यह सोचना अच्छा है कि तुम कैसे हो। याद रखो, तुम्हारा संबंध केवल तुमसे है। यह जो शरीर से लेकर प्राणी-पदार्थों से भरा संसार दिखता है, तुम्हारे साथ अंततः नहीं है। जब तक लगता है कि साथ है तब तक भी वह क्षणिक है, मिलता-छुटता रहता है। तुम्हारे साथ निरंतर तो केवल तुम हो। इसलिए जो मनुष्य सदैव और निरंतर आत्मा में ही रमता है, उसी की याद करता, उसी की चर्चा करता और उसी के विचार में मग्न रहता है, वह सही अपना काम कर रहा है। अनात्म-चिंतन तो दुख पैदा करता है, क्योंकि वह मलिनता लाता है। अतएव सदैव आत्माराम रहो।

सब कुछ जहां भूल जाता है और केवल स्वसत्ता चेतन ही रह जाता है, वह समाधि महा सुख है। इसका अधिक अभ्यास करना चाहिए। स्थूलबुद्धि के लोग नये-नये तरीके से काम-भोग द्वारा स्थिर आनंद लेना चाहते हैं। कुछ विश्व-अभिमान में डूबे हुए लोग राजनीति का आधार लेकर दूसरों पर आधिपत्य करके स्थिर आनंद लेना चाहते हैं। स्वामी

लोग दुनिया भर में अपने मत को फैलाने की तृष्णा में बहते हुए स्थिर आनंद की कल्पना करते हैं। यह सब मानसिक घुड़दौड़ है। जिससे अधिक मनुष्यों का संबंध बढ़े, अधिक जगत-प्रपंच बढ़े, मन-इंद्रियां उत्तेजित हों, वे स्थिर शांति के पथ नहीं हैं। स्थिर सुख का पथ समाधि है।

* * *

संसार मेरे में नहीं है। वह मन और इंद्रियों के झरोखों से प्रतीत होता है। वह क्षण-क्षण बदलता है और ओझल होता जाता है। मेरे लिए सत केवल मैं हूँ। मैं का बोध करने वाले अन्य असंख्य हैं, वे मेरे सजाति हैं। परंतु उनसे भी मेरा संबंध नहीं है। न मेरा संबंध दृश्यमान-जगत से है और न अन्य जीवों से है। मेरा संबंध केवल मैं से है। इसका अनुभव समाधि में स्पष्ट होता है और सुषुप्ति में भी होता है। इस संसार में कहीं भी मोह न रह जाये, ऐसा विवेक सब समय जाग्रत रहना चाहिए। मोह तो पीड़ा है, फिर उसे क्यों स्वीकारे। कम खाये और गम खाये, और सदा सुखी रहे।

* * *

श्री विशाल साहेब ने कहा है—“इच्छा युद्ध निशि दिन करो, और से बोलो नाहिं। नाशि करो यह शत्रु को, और शत्रु कोइ नाहिं॥” अपने मन की इच्छाओं को मार लेने वाला सदा सुखी रहता है। अपने विषय में दूसरे को समझाने की आवश्यकता नहीं है, अपितु अपने को सदैव इच्छा-रहित बनाने की आवश्यकता है। किसी जीव का किसी से संबंध नहीं है। सबको अपनी दुख-निवृत्ति से संबंध है और दुख होता है इच्छा उत्पन्न होने पर। अपने मन के अंधकार-परदे को फाड़ो। लोग अपने मन को नहीं समझ पाते हैं। मन के जंगल में इच्छा सिंह है जो तुम्हें खा रहा है। उसे मारो।

* * *

तृष्णा भव-पथ है, दुख का रास्ता है। तृष्णा का पूर्ण समाप्त हो जाना भव-पथ का अंत है। जिसका रास्ता समाप्त हो गया, वह अपने गंतव्य पर पहुंच गया। गंतव्य, मंजिल, गोल है आत्मशांति, पूर्ण आनंद, आत्यंतिक सुख, स्वरूपस्थिति, निर्वाण, अद्वैतस्थिति, ब्राह्मी स्थिति, हकबीनी, बक्रा, शेष, शिवतत्त्व, पारख स्थिति इन जैसे अनेक नामों से जानने में आने वाली दशा जो कि आत्मसंतोष है। हे मन! संसार से थको। कामनाओं से अलग रहो। अहंकार शत्रु को पास में न फटकने दो। इस छूट जाने वाले शरीर-संसार में क्या रखा है? आज तक संसार में दुख के सिवा, क्या पाये हो? सिमित जाओ चारों ओर से। मन को मारकर भीतर प्रवेश करो जो तुम्हारा अक्षय-भवन है।

* * *

पीछे सत्तर वर्षों से जब से होश-चेत में आया, मैं देख रहा हूँ कि मैंने जिसके लिए हर्ष या शोक किया वह कुछ नहीं था। क्योंकि वह पीछे नहीं रह गया। ज्यादा साफ होगा ऐसा कहने से कि वह क्षणिक था। सबकुछ क्षणिक है। इधर संसार का दुख अपार है। प्राकृतिक आपदा, दुर्घटना से तो कभी-कभी, किंतु क्रूर और कायर मनुष्यों के घातक प्रयोग से बहुतों की जानें जाती हैं। यह संसार कैसा दुखों का स्थान है।

* * *

जीवन का सार लाभ है सदैव अपने स्वरूपभाव में निमग्न रहना। जड़-दृश्य सारा संसार-सागर है जो कारण-कार्य का प्रवाह है। उसमें मोहकर हम फंसे हैं। दृश्य का सारा मोह सर्वथा छूट जाने पर मन स्वरूपभाव में ही निमग्न रहता है। जड़-दृश्य तो अनात्म है, अनित्य है, परिवर्तनशील है, छूट जाने वाला है, किंतु मैं से मैं कभी पृथक नहीं होता हूँ। इसलिए स्वरूप भाव में सब समय रहने से ही सारे संतापों का अंत होकर परमानंद का लाभ मिलता है जो परम शांतिपद है। □

सच्ची कुर्बानी

लेखक—डॉ. अमरनाथ सिंह

चेतन अपने गांव से किसी काम से शहर गया हुआ था। टैक्सी से उतरकर रिक्शा द्वारा अपने गन्तव्य की ओर जा रहा था। देखा कि सहसा एक बाइक सवार ने पैदल जाते हुए एक व्यक्ति को टक्कर मार दी और भाग गया। वह व्यक्ति सड़क पर गिरकर कराहने लगा। चेतन ने रिक्शा वाले से कहा—“रुको! ज़रा उस व्यक्ति को देखें। लगता है वह काफी चोटिल हो गया है क्योंकि वह जोर-जोर से चीख रहा है।” चोट के स्थान से खून बह रहा था। उसकी हालत देखकर चेतन ने उसे रिक्शे पर लिटाया और ले जाकर एक सरकारी हास्पिटल में भर्ती कराया। डॉक्टर ने उसका चेकअप किया, घाव की मरहम पट्टी करवा दिया और नर्स को उसे दर्द की दवा देने को कहा। दर्द में आराम होने पर एक्स-रे के लिए रेफर किया। चेतन भी उसके साथ एक्स-रे रूम में गया। एक्स-रे रिपोर्ट के मुताबिक उसके पैर में फ्रैक्चर था। डॉक्टर ने प्लास्टर बांध दिया।

चेतन के पूछने पर उसने अपना परिचय बताया—“मेरा नाम विद्याशंकर है। मेरे पिता जी का नाम शिवशंकर त्रिपाठी है। मैं ज्वालापुर का रहने वाला हूँ।” “यहां कहां किसलिए आये थे?” चेतन ने पूछा। विद्याशंकर ने बताया—“कल रक्षाबन्धन का त्योहार है। टैक्सी स्टैंड से 100 मीटर की दूरी पर रतन सिनेमा के पीछे गोसाईं टोला में अपनी बहिन से राखी बंधवाने मैं टैक्सी से उतरकर पैदल ही जा रहा था। तभी यह घटना हो गई और आप देवता बनकर मेरी मदद में आ गये। बहुत-बहुत शुक्रिया आपको। आपसे विनम्र प्रार्थना है कि उपरोक्त पते पर आप मेरी बहिन इन्दू और जीजा राघव मिश्र को इस घटना की जानकारी देने की कृपा करें।”

पूछते-पूछते चेतन विद्याशंकर की बहिन इन्दू के घर पहुंचा और पूरी घटना की जानकारी दी। इन्दू और राघव मिश्र चेतन के साथ हास्पिटल गये। चेतन ने इन्दू

और राघव को विद्याशंकर से मिलवाया। घटना की पूरी जानकारी होने पर इन्दू और राघव चेतन के इस व्यवहार से बहुत प्रभावित हुए। बार-बार चेतन का आभार व्यक्त करने लगे। कुछ देर बाद चेतन अपने काम से अन्यत्र चला गया। जागने पर विद्याशंकर अपनी बहिन इन्दू से पूछने लगा—“वह व्यक्ति जिन्होंने आप लोगों को यहां तक पहुंचाया है, कहां गया? उन्हें बुलाइये। मैं उनका परिचय नहीं पूछ पाया। वह आदमी नहीं देवता है। बाहर देखिये, उन्हें ढूंढकर लाइये।” इन्दू बाहर गयी, इधर-उधर देखा पर चेतन कहीं नहीं दिखा। वापस आकर इन्दू ने विद्याशंकर को बताया—“वे कहीं दिखे ही नहीं।” विद्याशंकर को बहुत अफसोस हो रहा था। बार-बार अपने आप को कोस रहा था कि मैंने तुरंत ही उनका पता क्यों नहीं पूछा? दो-तीन महीने में विद्याशंकर ठीक होकर अपने घर आ गया।

चैत्र का महीना था। लोग मनकामेश्वर जा रहे थे। उसी के आजू-बाजू में ज्वालापुर गांव है, ऐसा चेतन ने सुना था। उसके मन में उत्सुकता हुई। घूमने के बहाने चेतन अपने दोस्त रहमान के साथ मनकामेश्वर गया। वहां लोग मनकामेश्वर के दर्शन कर रहे थे। घंटा-घड़ियाली बजा रहे थे। पहाड़ी के नीचे मेले का माहौल था। चेतन का खयाले अन्दाज अलग था। वह रहमान के साथ वहां के रमणीय दृश्य, पहाड़ी पर बने मंदिर के चारों ओर की मनोहर प्राकृतिक छटा देखने में मशगूल था। विद्याशंकर भी मेले में गया था। अचानक चेतन पर उसकी दृष्टि पड़ी, वह सोचने लगा—“अरे, यह तो वही चेहरा नजर आ रहा है, लेकिन यहां कैसे?” वह उस ओर दौड़ पड़ा। नजदीक पहुंचकर विह्वल हो उठा। वह चेतन के सीने से लिपट गया। उसकी आंखों से खुशी के आंसू छलक पड़े। वह चेतन से बोला—“भैया, मुझे माफ कीजिएगा, उस दिन मैं आपका परिचय नहीं पूछ पाया था। मुझे इस बात का बड़ा

अफसोस हो रहा था। आपने मेरे साथ जो अहसान किया है, उसे कभी नहीं भूल सकता। मैं आपसे मिलने को बहुत आतुर था। मेरी इच्छा पूरी हुई।” “यह तो इन्सान का फ़र्ज होता है, यदि वह कर सके तो।” चेतन ने विद्याशंकर से कहा।

सूरज ढल रहा था। रहमान ने चेतन से कहा— “भाई चेतन, अब हमें घर चलना चाहिए।” विद्याशंकर को रहमान के संबोधन से चेतन के नाम का पता चल गया। टोकते हुए विद्याशंकर बोला— “चेतन भैया! यह कैसे हो सकता है? आप लोगों को अब हमारे घर चलना होगा। यह मेरा सौभाग्य है कि आप मिल गये।” आग्रह स्वीकारते हुए चेतन और रहमान विद्याशंकर के साथ चलकर उसके घर पहुंचे। घर पर एक बुजुर्ग चारपाई पर बैठे थे। विद्याशंकर के पिता शिवशंकर त्रिपाठी ही होंगे, ऐसा समझकर चेतन और रहमान ने उनको सादर अभिवादन प्रणाम किया। पंडित जी ने चेतन से पूछा— “लाला, कहां से आते हो?” चेतन कुछ बताता तभी एक आठ-दस साल की लड़की वहां पहुंची। पंडित जी ने उसे पुकारते हुए कहा— “सधनवा, कहां जाती हो? जा दालान की चाभी ला। तेरे चाचा के साथ कोई आया है।” वह चाभी लेकर आयी। विद्याशंकर ने दालान में चेतन और रहमान को बैठाया। विद्याशंकर की भतीजी साधना घर से नाश्ता लायी। तीनों लोग नाश्ता किये। विद्याशंकर ने अपने पिता शिवशंकर त्रिपाठी तथा अपने बड़े भाई रमाशंकर से चेतन का परिचय करवाया और शहर की घटना का हाल बताया तो शिवशंकर भावविभोर हो उठे। चेतन को साधुवाद देने लगे।

शाम होने लगी थी। चेतन का दोस्त रहमान बार-बार घर वापस चलने को उतावला हो रहा था लेकिन विद्याशंकर एवं उसके घर वाले उनके जाने की बात नहीं माने अन्ततः दोनों रुक गये। रात में खाने की तैयारी हो रही थी। उससे पहले चेतन ने सबके समक्ष कहा— “मेरा दोस्त रहमान मुस्लिम है और मैं निम्न जाति का हूँ। आप लोग ब्राह्मण हैं। आप अपनी रसोई

में हमें भोजन कैसे करा पायेंगे? मैं सच्ची बात बताने में यकीन रखता हूँ।” पण्डित जी ने कहा— “बेटा, ऐसी कोई बात नहीं है। सब हो जायेगा।” नौ बजे भोजन वहीं दालान में ही आ गया। साधना ने भोजन परोसा। विद्याशंकर, चेतन और रहमान एक साथ भोजन किये। यह शायद चेतन की बात का ही असर था अन्यथा उन दोनों को अलग भोजन कराया जा सकता था। भोजन करने के बाद अन्त में पण्डित जी ने कहा— “आप लोग थालियां थोड़ा खंगाल दीजिएगा।” चेतन स्तब्ध हो गया। कुछ देर ठहरकर बोला— “पंडित जी, हमें पहले ही बता देना चाहिए था। हम लोग या तो अपने घर चले गये होते, या बिना खाये ही रात गुजार लेते, सुबह होते ही चले जाते। रही बात अब अगर हमारे भोजन करने से बर्तन अशुद्ध हो गये हैं तो वे बर्तन हम अपने साथ लेते जायेंगे। भोजन सहित बर्तन की जितनी कीमत हो बता दीजिए हम उसे दे दें।” इस बात से विद्याशंकर मायूस हो रहा था; वह धर्मसंकट में पड़ गया। पण्डित जी ने कहा— “समाज में जो चला आया है उसे तो सभी को निभाना चाहिए।”

चेतन ने कहा— “देखिए, पण्डित जी! प्रकृति प्रदत्त हर मनुष्य का एक जैसा क्रिया-कलाप है, एक जैसी सबकी पैदाइश है, एक जैसा खाने-पीने का ढंग है, एक जैसा रोना, चिल्लाना, हंसना, बोलना, टट्टी-पेशाब का तरीका और यहां तक कि सब की मौत भी सुनिश्चित है। सबके रंगों में एक रंग का लहू संचरित है। यह तो कुछ लोग अपने स्वार्थ के लिए इन्सान को भाग-प्रतिभाग में बांट रखे हैं। कब तक हम और आप इस अहं और हीन भावना को ढोते रहेंगे। हमें इन भावनाओं की कुर्बानी करनी होगी अन्यथा ऐसे तो समाज बिखरा ही रहेगा। इस अंधी सोच के परिणाम में एकता का वृक्ष कभी नहीं बढ़ सकता।” चेतन की इन तर्कसंगत बातों का असर विद्याशंकर और रमाशंकर पर पड़ा। विद्याशंकर ने पण्डित जी से कहा— “पिताजी, चेतन भैया कितनी हक्रीकृत की बात बता रहे हैं। चेतन भैया

ने सड़क पर मुझे तड़पते हुए यह तो नहीं देखा था कि मैं ब्राह्मण हूँ या और किसी जाति का। इस पर आपको गौर करना चाहिए।” चेतन ने वैदिक युग का हवाला देते हुए कहा—“वेदों की रचना सभी ने मिलकर की है। वेदों का सन्देश है—सब एक साथ उठो, बैठो, एक साथ काम करो, एक साथ आपस में समान व्यवहार करो।” पंडित जी सन्तुष्ट दिखे। सभी प्रेम से दालान में सोये।

सुबह हुई। नित्य क्रिया के बाद दालान में बैठे सब लोग चाय-नाश्ता कर रहे थे। गांव के मुहर्रम, शहजाद और केशरी भी पंडित जी की दालान में आ गये। सभी आपस में तरह-तरह की बातें कर रहे थे। चेतन के नेक ख्यालात सभी को अच्छे लग रहे थे। उसी दौरान मुहर्रम ने चेतन से कहा—“चेतन भाई! आपके खयाल हमें बहुत नेक लगते हैं। पण्डित जी ने आपके बारे में सब कुछ बताया है। दस दिन बाद हमारा त्यौहार बकरीद पड़ रहा है। मैं आप दोनों लोगों को दावत दे रहा हूँ। आप लोग तब तक रुकिये या तो उस दिन आ जाइएगा। हमने बहुत सुन्दर बकरा पाल रखा है। उसकी कुर्बानी होगी। उसका गोशत गरीबों को भी बाँटेंगे। इससे सबाब होता है।” गौर से मुहर्रम की बातें सुनने के बाद चेतन ने कहा—भाई मुहर्रम, कुर्बानी का क्या यही मतलब होता है कि कुर्बानी के नाम पर किसी बेजुबान, बेगुनाह प्राणी का कत्ल करके सबाब हासिल करें? किसी गरीब को एक दिन गोशत दे देने से क्या उसकी प्रतिदिन की भूख मिटा करेगी? मुहर्रम ने कहा—“हमारे मजहब में इसकी बहुत अहमियत है।” चेतन ने कहा—“कुर्बानी का मतलब तो किसी के हित के लिए अपने हित का त्याग करना होता है। परहित के समान कोई धर्म नहीं होता। गरीब-दुखियों की यथासम्भव सहायता करना सबसे बड़ा धर्म होता है। दूसरों को पीड़ा पहुंचाने के समान कोई अधम काम नहीं। सत्य के प्रति निष्ठा रखना, चोरी न करना, किसी की हिंसा न करना और मन में बसी तमाम बुराइयों को मन-मस्तिष्क से मिटाना सबसे अच्छी कुर्बानी है।

दुनिया में लाखों-करोड़ों बेजुबानों, बेचारों का कत्ल धर्म से जोड़कर अंधविश्वास के चलते किया जाता है। कुर्बानी का यह स्वरूप हमारे नजरिये से क़तई वाज़िब नहीं लगता। वैसे भी हम शाकाहारी हैं। आपकी दावत में कैसे शामिल हो पायेंगे। हमें आपसे बेहद लगाव-प्रेम है, लेकिन मैंने अपना विचार बता दिया।” रहमान ने भी चेतन के विचारों का समर्थन करते हुए कहा—“चेतन भाई के खयालों में सच्चाई है।” इस तरह तर्क-वितर्क चलता रहा। सभी चेतन के विचारों को ध्यानपूर्वक सुन रहे थे। सभी उसकी सकारात्मक सोच की प्रशंसा कर रहे थे।

काफी समय तक गप-शप होती रही। भोजन का समय हो गया। गांव के बाकी लोग अपने-अपने घर चले गये। चेतन को विद्याशंकर के यहां बहुत अच्छा लगने लगा था। जैसे अपने घर-परिवार में ही मौजूद हो। कुछ देर बाद विद्याशंकर, रमाशंकर, चेतन और रहमान एक साथ भोजन करके दालान में विश्राम करने लगे। इसी बीच इन्दू के घर से खबर आयी कि उनके बच्चे का अगले दिन देवीधाम में ‘मुण्डन’ होगा। इस कार्यक्रम में विद्याशंकर ने चेतन को शामिल होने के लिए उससे गुजारिश की। चेतन ने स्वीकार तो लिया किन्तु इसमें उसकी कोई रुचि नहीं थी।

शाम को ही इन्दू और राघव मिश्र विद्याशंकर के घर आ गये। वे चेतन को देखकर बहुत खुश हुए। इन्दू के बच्चे पैदा होते ही मर जाते थे। इस बार इन्दू की मां ने मनौती की थी कि मेरी बिटिया का बच्चा सही सलामत रहा तो उसका मुण्डन देवीधाम में करायेंगे और उसकी दीर्घायु के लिए भेड़ के बच्चे की बलि देंगे। अगले दिन सारी तैयारी के साथ सभी लोग देवीधाम पहुंचे। बच्चे का मुण्डन हुआ। मेमने को देवी के सामने किया गया फिर कुछ देर बाद उसे देवी धाम के पीछे बलिवेदी पर जल्लाद ने रखा। मेमना टुकुर-टुकुर ताक रहा था। चेतन ने विद्याशंकर से कहा—“देखिये थोड़ी देर में एक अबोध बेकसूर प्राणी को किसी प्राणी की दीर्घायु की कोरी कल्पना की बलिवेदी

पर अपनी जान गंवानी पड़ेगी। और दिल दहलाने वाला मंजर सामने होगा। जिसे मैं नहीं देख पाऊंगा।” चेतन और रहमान वहां से हट गये। जल्लाद ने खचाक से मेमने की गर्दन रेत डाली। चेतन के घर की बात होती तो शायद यह कर्मकाण्ड टल जाता। उसकी आंखों से आंसू छलक पड़े। विद्याशंकर का दिल भी दहल गया। चेतन ने विद्याशंकर से कहा—“भाई विद्याशंकर, लोग अन्धविश्वास, पाखण्ड, देवी-देवता, भूत-भवानी के चक्कर में इतना फंसे हैं कि जल्दी से छुटकारा पाना मुश्किल है। बताइये किसी जीव की हत्या करके किसी दूसरे जीवधारी की उम्र बढ़ाना भला कैसे सम्भव हो सकता है? कोई बच्चा अपनी मां के गर्भ में पलते हुए किन्ही कारणों की कमी या बेशी का शिकार होता है। यह दृश्य आज मैंने पहली बार देखा है। इस अन्धी सोच और विश्वास का परिणाम बिल्कुल अच्छा नहीं होता।” विद्याशंकर ने कहा—“भैया चेतन, आप बिल्कुल सही कह रहे हैं। हमें भी पसन्द नहीं, पर लोगों की धारणाओं का हम क्या कर सकते हैं? इसे भी लोग कुर्बानी का नाम देते हैं।” चेतन ने कहा—“यह भी अन्धी कुर्बानी का एक हिस्सा है।”

दो घंटे बाद सभी घर पहुंच गये। शाम तक चेतन और रहमान भी अपने गांव चले गये। विद्याशंकर चेतन को बराबर याद करता रहता। दोनों में टेलीफोनिक बातचीत होती रहती। पांच-छः महीने बाद विद्याशंकर चेतन के यहां गया। चेतन के घर का वातावरण, सभी का उसके प्रति व्यवहार विद्याशंकर को बहुत भाया। दो-चार दिन वहां रहकर फिर अपने गांव चला गया।

धीरे-धीरे एक साल से ऊपर हो रहा था। चेतन पुनः विद्याशंकर के गांव गया। सबसे मिलकर बहुत खुश हुआ। सबका हाल-चाल पूछा, विद्याशंकर से इन्दू और उसके बच्चे की कुशलता के बारे में पूछा। उसने बताया—“क्या कहें, बच्चा तो जब देखो तब बीमार ही रहता है। जीजा-दीदी उसे लेकर अक्सर परेशान ही रहा करते हैं। यह कैसी विडम्बना है, किसी को कई-कई

बच्चे हुआ करते हैं। भले-चंगे रहते हैं, जीजा-दीदी को एक बच्चे में भी आफत।” चेतन ने दुख व्यक्त करते हुए कहा—“क्या करोगे? यह संसार ही सुख-दुख है। इसके अलावा कुछ नहीं।”

शाम को चेतन विद्याशंकर के साथ घूमने निकला। दोनों पहाड़ की तरफ गये और उसकी वादियों में खो गये। चांदनी रात का दिलकश नजारा उन्हें घर जाने से बरबस रोक रहा था। दोनों देर रात घर वापस आये, खाना खाये और कुछ ही देर में सो गये।

अहले सुबह विद्याशंकर और चेतन पहाड़ की तरफ निकले। वहां मनोहारी बसंती छटा जबरन मन को खींच रही थी किन्तु धूप बढ़ने लगी थी तो वे घर की ओर प्रस्थान किये। पण्डित जी की दालान में लोगों का जमावड़ा था। शहजाद, मुहर्रम के साथ और कई लोग वहां पहुंच गये। वार्तालाप चल रहा था। तभी सूचना मिली कि इन्दू का बच्चा आदित्य बहुत बीमार है। उसे अस्पताल में भर्ती कराया गया है। चेतन ने विद्याशंकर से कहा—“चलो हम और तुम वहां शीघ्र ही चलें।” दोनों तैयार हुए और शहर के उस अस्पताल में पहुंचे जहां इन्दू का बच्चा आदित्य भर्ती था। उन्हें देख, इन्दू के मुरझाये चेहरे को थोड़ी ऊर्जा मिली। उसी बीच राघव मिश्र वहां उपस्थित हुए। उन्होंने बताया कि—“डॉक्टर ने कहा है कि आदित्य को दो यूनिट खून की जरूरत है, तभी यह बच्चा सही हो सकता है। एक यूनिट की अभी सख्त जरूरत है और दूसरा यूनिट छः महीने बाद।” राघव और विद्याशंकर ब्लड ग्रुप की जांच करवाने गये। उनके साथ चेतन भी गया। राघव और विद्याशंकर का ब्लड लिया गया, चेतन ने भी अपना हाथ ब्लड के लिए बढ़ा दिया। जांच में राघव और विद्याशंकर का ब्लड ग्रुप आदित्य के ब्लड ग्रुप से मेल नहीं खाया। वे निराश हो गये। चेतन के ब्लड ग्रुप की जांच देखी गयी, शत-प्रतिशत मेल खा गया। चेतन का चेहरा खिल उठा। वह बोल उठा—“मुझे अपार खुशी है जो आदित्य के काम आ सका।” इन्दू पास में खड़ी थी। यह सुनकर इन्दू भावविभोर हो गई, वह

दौड़कर चेतन से लिपट गई। बोली—“भैया चेतन, आप वाकई देवता हैं। मेरे भाई की दुर्घटना के वक्त आप देवता बनकर पहुंच गये थे और आज हमारे आदित्य के लिए भी देवता बनकर आ गये हैं।” डॉक्टर ने चेतन का ब्लड एक यूनिट निकाला और आदित्य को चढ़ा दिया। दो दिन बाद उसकी हालत सुधरने लगी। दो महीने में आदित्य पूर्ण स्वस्थ हो गया जैसे उसमें नया रक्त दौड़ने लगा है। इन्दू और राघव मिश्र चेतन को कभी नहीं भूलते। रोजाना उसको साधुवाद देते हैं।

छः महीने बाद आदित्य के लिए पुनः ब्लड की जरूरत थी। चेतन को याद था। वह पुनः विद्याशंकर के साथ शहर गया और दोनों इन्दू के यहां ठहरे। चेतन ने इन्दू से कहा—“दीदी, चलिये आदित्य को दूसरा यूनिट ब्लड चढ़वा दीजिए।” इन्दू ने कहा—“नहीं भैया, कोई और विकल्प ढूंढेंगे। दुबारा आप ब्लड देंगे तो कमजोरी आ जायेगी।” चेतन ने कहा—“नहीं-नहीं दीदी! ऐसा कुछ भी नहीं है। कोई स्वस्थ व्यक्ति छः महीने बाद पुनः अपना ब्लड डोनेट कर सकता है।” इन्दू के बार-बार मना करने पर भी चेतन नहीं माना। सभी साथ में आदित्य को लेकर अस्पताल गये। डॉक्टर के पूर्व परामर्श के अनुसार नर्स ने चेतन का पुनः एक यूनिट ब्लड निकाला और आदित्य को चढ़ाया। आदित्य पूर्ण स्वस्थ था। अगले दिन रक्षा बन्धन का त्योहार था। संयोग से चेतन की कोई सगी बहिन नहीं थी। सुबह स्नानादि करके सभी तैयार हो गये। इन्दू ने चेतन और विद्याशंकर को बुलाया। दोनों को प्रेम से लड्डू खिलाया और राखी बांधी। चेतन आत्मविभोर हो गये। बोला—“आज मैं पहली बार बहिन-भाई के रिश्ते का मधुर अहसास कर रहा हूं।” इन्दू ने कहा—“भैया चेतन, आज मैं अपने तीन भाइयों के प्यार की छाया महसूस कर रही हूं।” आदित्य चेतन और विद्याशंकर के साथ खेल रहा था। विद्याशंकर बोल उठा “आज मैं कुर्बानी का सही अर्थ समझ लिया।” उसने चेतन को अपनी बांहों में भींच लिया। □

कबीर कहाने वाले ने

रचयिता—श्री हरद्वारी लाल

सत्य का बिगुल बजाया था, कबीर कहाने वाले ने।
मुक्ति का मार्ग दिखाया था, फकीर कहाने वाले ने ॥

समता एकता प्रेम भाव का, मानव को पाठ पढ़ाया था।
गली गली चौराहे जाकर, भूले भटकों को चेताया था ॥
धरती को स्वर्ग बनाने आया था, बन्दीछोर कहाने वाले ने ॥

मानव को मानव से जोड़कर, मानवता से नाता जोड़ा था।
द्वेष भाव घृणा नफरत औ, कटुता से नाता तोड़ा था ॥
ऊंच नीच का भेद मिटाया था, छुआछूत मिटाने वाले ने ॥

कौन है ऊंचा कौन है नीचा, जन्म की घाटी एक समान।
एक खाल एक रक्त मांस है, हड्डी का पिंजर एक समान ॥
जन्म जात कुल मर्यादा तोड़ी, आत्मज्ञान कराने वाले ने ॥

पंडित मुल्ला का घमण्ड तोड़, राह जन्म की एक बतायी।
कौन हिन्दू और तुरुक कौन है, खुदाई सबकी एक बतायी ॥
इन्सानी दर्जा एक बताया था, अहसास कराने वाले ने ॥

पूजा नमाज कर्मकाण्ड में, भटकी जनता सारी थी।
भूत प्रेत के भ्रमजाल में, उलझी जनता सारी थी ॥
घट घट में ज्ञान ज्योति जलायी, आत्मज्ञान कराने वाले ने ॥

कौन हो तुम कहां से आये, संग साथ क्या लाये थे।
धन दौलत और रिश्ते नाते, तुम ही स्वयं बनाये थे ॥
करनी की करतूत बतायी, कर्मयोग सिखाने वाले ने ॥

देवी देवता पत्थर पूजन के, पाखण्डों में फंसा था इंसान।
खुद में ही खुद को पहचानो, तेरे ही भीतर बैठा तेरा भगवान ॥
भ्रमजाल भय जनता के तोड़े, स्वरूपज्ञान कराने वाले ने ॥

मनुष्य बेचारा तड़प रहा था, अमन चैन पाने को।
नित नये रस्ते ढूंढ रहा था, मुक्ति मंजिल पाने को ॥
दिखलाया सदाचार संयम का मार्ग, जीवन्मुक्त कराने वाले ने ॥

आओ, लौट चलें, अब अपने घर को!

लेखक—श्री रणजीत कबीरपंथी

अपने विद्यार्थी जीवन में मुझे चिड़िया के बच्चों से सम्बन्धित एक कविता पढ़ने को मिली थी। उसमें चिड़िया के बच्चों के 'अपने घर' लौट आने की बात लिखी थी। उसमें आये हुए 'घर' शब्द के गूढार्थ को उस समय निजस्वरूप का बोध न होने से समझ नहीं पाया था। परन्तु सद्गुरु एवं पारखी संतों के सत्संग से जब यथार्थ बोध हुआ तो उस कविता के 'घर' शब्द का अर्थ समझ सका। वह कविता मुझे अभी भी याद है, जो इस प्रकार है—

‘एक चिड़िया के थे बच्चे चार।
घर से निकले पंख पसार।
पूरब से पश्चिम को आये।
उत्तर से दक्षिण को धाये।
घूमघाम जब घर को आये।
माता को ये वचन सुनाये।
देख लिया हमने जग सारा।
अपना घर है सबसे प्यारा।’

हम भी अनादि काल से अपने 'निजस्वरूप' रूपी घर को छोड़कर बाहर भटक रहे हैं। अतः हमें चाहिए कि उस चिड़िया के बच्चों की तरह भटकना छोड़ें और अपने निजस्वरूप रूपी घर में लौट आयें। यहीं पर हमें वास्तविक सुख-शांति एवं विश्राम मिलेगा।

वास्तव में हम बहुत भटके हैं, पर अब न भटके। जहां हम रहते हैं, वह हमारा घर नहीं है। यहां सब पराये हैं। हमारा शरीर भी हमारा नहीं है। यह 'पर' है। शरीर से लेकर समस्त प्राणी-पदार्थ तथा सम्पूर्ण जगत हमसे पृथक है। ये सब हमारे नहीं हैं। इन सबको अपना मान-मान कर अनादिकाल से हम यहां भटक रहे हैं।

हम ऐसे शरीर से मोह करके उसमें आसक्त हो रहे हैं, जो पूरा गंदगी का पिटारा ही है। इसमें लार, वात, पित्त, कफ, खून, मल-मूत्र के अतिरिक्त और है क्या? इतने गंदे शरीर में हम पड़े हुए हैं। इससे मोह करके

भटक रहे हैं। जरा विचारो; इस शरीर में रहकर हमें दुख के सिवाय मिल क्या रहा है? हम विषय-भोगों में सुख मानते हैं, परन्तु वह सुख कहने मात्र का है। वह स्थायी सुख नहीं है। उस सुख का पीछा दुख ने कर रखा है। हम अपने वर्तमान शरीर की तरह पशु-पक्षियों की योनियों में भी शरीर धारण करके अनेकों बार भटक चुके हैं।

हम ईश्वर, उसके अवतारों तथा देवी-देवताओं को खोजने में भटक रहे हैं, जबकि ये सभी काल्पनिक हैं। हम स्वर्ग-सतलोक जैसे परलोकों को मानकर मरणोपरांत वहां जाने के लिए लालायित हो रहे हैं। इसी तरह हम अमरलोक, इन्द्रलोक, ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, देवलोक इत्यादि अनेकानेक परलोकों की मान्यताओं में उलझ रहे हैं।

हम जिस ईश्वर, परमात्मा, ब्रह्म, राम-रहीम, केशव-करीम, अल्लाह-खुदा आदि को पाना चाहते हैं, वह हमारे निजस्वरूप से कोई पृथक वस्तु नहीं है। लेकिन हम भ्रम-भूल में पड़कर इसे अपने निजस्वरूप से पृथक प्राणी, पदार्थों, दृश्यों और पारलौकिक कल्पनाओं तथा मान्यताओं में मानकर संसार में भटक रहे हैं। हमारे भटकने का यह सिलसिला अनादि काल से चल रहा है और वह आज भी जारी है। हम अब न भटके। इन सबमें भटकने से हमें अनन्त सुख एवं शांति कभी भी प्राप्त नहीं होने वाली है। अनन्त सुख एवं शांति तो हमें अपने आप में लौट आने से प्राप्त होगी। हमारा अपना निजस्वरूप ही हमारा अपना वास्तविक घर है। हम यदि शरीर से लेकर समस्त प्राणी-पदार्थों की तथा माने गये ईश्वर, देवी-देवताओं को प्राप्त करने की आसक्ति का परित्याग कर देंगे तो अपने निजस्वरूप रूपी घर में अवस्थित हो जायेंगे। हमारा भटकना सदा-सदा के लिए समाप्त हो जायेगा। फिर हम कभी भी नहीं भटकेगे।

जो 'खानी जाल' और 'वाणी जाल' को बंधनप्रद समझ चुके हैं, तथा जिन्हें अपने निज चेतन स्वरूप का यथार्थ बोध है; ऐसे मुमुक्षुजनों को मेरे विचार अवश्य ही पसंद आयेंगे। लेकिन खानी जाल और वाणी जाल में रचे-पचे, उनमें खोये हुए अर्थात् डूबे हुए व्यक्ति शायद ही इन विचारों से सहमत हो पायेंगे। यदि इसी बात को स्पष्ट शब्दों में कहना चाहूं तो बात यह है कि दो प्रकार के व्यक्तियों को मेरे विचारों से सहमत होना कुछ कठिन हो सकता है। पहले भौतिकवादी व्यक्ति, जो पूरी तरह से नास्तिक एवं विषयभोगी होते हैं। खाना-पीना और मौज उड़ाना (Eat, Drink And Be Merry) ही इनके जीवन का सिद्धान्त होता है। ऐसे लोग खुले शब्दों में यह कहते हुए देखे जाते हैं कि—

'यावत् जिवेत् सुखं जिवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।

अर्थात् 'जब तक जीओ, सुख से जीओ, कर्जा लेकर घी पीओ। क्योंकि देह के राख में मिल जाने के बाद पुनर्जन्म कहां होता है?' अतः ये पूरी तरह से भोगवादी प्रवृत्ति के होते हैं। जिस प्रकार गोबर का कीड़ा गोबर में ही राजी रहता है, उसी प्रकार ये भी येन-केन-प्रकरेण विषय भोगों को अधिकाधिक मात्रा में भोगना ही अपना जीवनोद्देश्य मानते हैं। इनके लिए नैतिकता, धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य आदि कोई मायने नहीं रखते हैं। इनमें जो थोड़ी बहुत नैतिकता पाई जाती है, वह भी इसलिए कि इनकी धन-सम्पत्ति, भोग-पदार्थों का तथा इनका कहीं कोई अहित न हो जाये।

दूसरे प्रकार के व्यक्ति जो ईश्वरवादी होते हैं, वे भी मेरे विचारों से कम ही सहमत हो सकेंगे। यद्यपि वे भौतिकवादियों की तरह पूर्णरूपेण विषय-भोगी तो नहीं होते; लेकिन वे अपनी अतृप्त वासनाओं की पूर्ति करने तथा मरणोपरान्त कल्पित स्वर्ग-मोक्षादि प्राप्त करने के लिए ईश्वर की कल्पना करके उसे ही सब कुछ मानते हैं। अर्थात् ये ईश्वर के भरोसे रहते हैं और यह कल्पना दृढ़ कर लेते हैं कि ईश्वर को मानना चाहिए। उसके मानने से ही जीवन में सुख मिलेगा, वही गति-मुक्ति देगा। यदि उसकी भक्ति-उपासना नहीं की गई तो

जीवन दुःखमय हो जायेगा। समस्त प्रकार के दुखों को समाप्त करने की क्षमता ईश्वर में ही है। हम तो केवल उसके हाथ की कठपुतली हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि विषय-भोगी तथा ईश्वर, स्वर्गलोक, सतलोक, ब्रह्मलोक आदि की कल्पना और मान्यता को सत्य मानकर उन्हें अपना मुक्तिदाता तथा सुखदाता मानने वाले व्यक्ति मेरे विचारों से शायद ही सहमत हो सकेंगे। क्योंकि उनके अवचेतन मन में निहित उक्त कल्पनाओं तथा मान्यताओं के जड़ संस्कार रह-रहकर उनकी विवेक शक्ति को दबाने का कार्य करेंगे। उन्हें बलात् नकारात्मकता की ओर खींचकर ले जायेंगे। हां, यदि वे अपने जड़ संस्कारों के दबाव से मुक्त होकर किंवा निष्पक्ष बनकर विचार करेंगे तो मेरा विश्वास है कि वे न केवल मेरे विचारों से सहमत हों सकेंगे; बल्कि वे अपने नित्यमुक्त तथा नित्यतृप्त निजस्वरूप की महत्ता, गरिमा और महिमा को समझ सकने का सामर्थ्य भी उत्पन्न कर सकेंगे। इसके साथ ही वे मुमुक्षु बनकर अपनी 'स्वरूपस्थिति' बनाने की दिशा में भी अग्रसर होने का प्रयास कर सकेंगे, जो कि मनुष्य मात्र के जीवन का चरम और परम लक्ष्य है।

यहां पर इस बात का उल्लेख करना भी कोई अप्रासंगिक नहीं होगा कि हम अनादि काल से आवागमन में पड़े हुए हैं। चौरासी योनियों में भटक-भटककर हमने ऐसा कोई कार्य शेष नहीं छोड़ा है, जिसे हमने कभी नहीं किया हो। हम सब कुछ कर चुके हैं। केवल एक काम ही नहीं कर सके और वह काम है निजस्वरूप का बोध प्राप्त करके उसमें स्थित हो जाना।

हम विचार करें, संसार में हमें मिल क्या रहा है? रोज सुबह उठते हैं। उठते ही मल-मूत्र विसर्जन करते हैं। सबसे गंदी जगह में हाथ डालकर मल साफ करते हैं। इसके बाद हाथ-मुंह की सफाई, फिर स्नान का कार्य। घर की साफ-सफाई करना, अन्य गृह-सामग्री को व्यवस्थित करना, भोजन करना, फिर काम-धंधा के लिए निकल जाना। दिन भर वहां कार्य करते रहना।

शाम को थककर घर आना, कुछ आराम करना, भोजन करके कुछ मनोरंजन करने का असफल प्रयास करना और फिर सो जाना। इसके बाद अलगे दिन सुबह फिर उन्हीं कार्यों में जुट जाना जो कल किये थे।

हम जीवन भर ऐसा करते रहते हैं। समय गुजरता जाता है और वृद्धावस्था में पहुंच जाते हैं। जीवन की यही एक ऐसी अवस्था होती है, जिसमें कुछ ज्ञान-वैराग्य की बातें उत्पन्न होती हैं, वे भी वृद्धावस्था की परवशता के कारण। क्योंकि इस अवस्था में पूरा शरीर जीर्ण-शीर्ण हो जाता है। वह असाध्य रोगों से घिर जाता है। नेत्र-ज्योति कमजोर हो जाती है, कानों से ठीक सुनाई नहीं देता है। दांत कमजोर हो जाते हैं, या फिर गिर जाते हैं। पूरा मुंह पोपला हो जाता है। भोजन ठीक से नहीं कर पाते हैं। चेहरे पर झुर्रियां पड़ जाती हैं। सुन्दरता के स्थान पर कुरूपता अपना डेरा जमा देती है। घुटनों में दर्द होने लगता है। पांव डगमगाने लगते हैं। बिना सहारे के उठना-बैठना मुश्किल हो जाता है। सिर दर्द हो जाये तो मन बेचैन बना रहता है। लिवर खराब हो जाये, बी.पी. या सुगर घट-बढ़ जाये, लकवा मार जाये, हार्ट डिजीज हो जाये। इसके ऑपरेशन हो जाये तो जीवन की समस्त खुशियां, समस्त आनन्द शशा के सींग की तरह गायब हो जाता है। घर के किसी कोने में या किसी एकांत कमरे में बिस्तर पर पड़े रहते हैं। पास में एक टेबल रहती है, उस पर पीने के पानी का बर्तन, दवाइयों की शीशियां, टेबलेट, केप्सूल आदि पड़े रहते हैं। ऐसी हालत हो जाती है कि पास में कोई उठना-बैठना पसंद नहीं करता है। अब ऐसी स्थिति में ज्ञान-वैराग्य उत्पन्न हुआ भी तो वह किस काम का? क्योंकि इस जर्जर अवस्था में ज्ञान-वैराग्य को कार्य रूप में परिणत करने का पुरुषार्थ तो नहीं किया जा सकता।

अतः दुखी होने और पश्चाताप करने के अतिरिक्त कुछ और किया भी नहीं जा सकता है। पुरुषार्थ का कार्य तो युवावस्था में किया जा सकता था; लेकिन उस समय तो पुत्रैषणा और लोकैषणा में इस कदर खोये

रहते हैं कि पुरुषार्थ करने का विचार ही नहीं कर पाते हैं।

अरे, कितनी गफलत में जीवन गुजार दिया जाता है। हम अपनी पुत्रैषणा पर ही विचार करें तो क्या पुत्रों से सुख मिलता है? संसार में कोई-कोई भाग्यशाली होते हैं, जिन्हें पुत्रों का सुख प्राप्त होता है। शेष तो अपने जीवन में सबसे अधिक दुखी यदि किसी से रहते हैं तो अपने पुत्रों से। क्योंकि वे मनोनुकूल नहीं निकल पाते हैं। आज्ञाकारी नहीं होते हैं। पुत्र हो तो भी दुखी और न हो तो भी दुखी। पुत्र प्राप्ति के विषय में विचार करें तो हम जब तिर्यक योनियों में होते हैं तो वहां भी पुत्र प्राप्ति होती है। यहां मनुष्य योनि में तो दो-चार पुत्र-पुत्रियों की प्राप्ति हो पाती है जबकि कुत्ते, बिल्ली, सूअर आदि की योनियों में तो लाईन लग जाती है। अतः पुत्रैषणा रखने से हम युवावस्था में पुरुषार्थ नहीं कर पाते हैं। पुत्रैषणा कभी-कभी कितनी दुखदायक तथा घातक बन जाती है, इस तथ्य को हम निम्न उदाहरण से समझ सकते हैं।

एक सेठ था। उसके कई कल-कारखाने और सैकड़ों नौकर-चाकर थे। वह समस्त प्रकार की भोग सामग्री से सम्पन्न था फिर भी वह दुखी था क्योंकि उसके कोई संतान नहीं थी। संतानें हुईं अवश्य; लेकिन वे अल्पायु में ही काल-कवलित होती गईं। अंततः उसे सातवीं संतान एक पुत्र के रूप में प्राप्त हुई। उसकी खुशी का कोई ठिकाना नहीं रहा। उसकी पत्नी तो उससे हजार गुना खुश थी। दोनों ही अपने उस पुत्र की परवरिश में लगे रहते। उसे छींक आती तो वे तत्काल डॉक्टर को बुलवा लेते।

जब वह बड़ा हुआ तो सेठ ने उसे अच्छे स्कूल में भर्ती कराया। वह भी होनहार निकला। अपनी स्कूली शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात उसने उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए अमेरिका जाने की इच्छा व्यक्त की। पहले तो माता-पिता ने वहां जाने से खूब मना किया, लेकिन पुत्र की बलवती इच्छा के आगे उनकी एक नहीं चली। हारकर उन्होंने उसे अमेरिका भेज दिया।

अमेरिका में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के दौरान वह एक अमेरिकन युवती से प्रेम-जाल में फंस गया। और उसने उससे विवाह ही कर लिया।

शिक्षा समाप्ति के पश्चात लड़के ने अपनी पत्नी को अपने देश भारत चलने को कहा। इस पर लड़की ने उसके साथ भारत जाने से साफ मना कर दिया। और कहा कि वह चाहे तो अपने माता-पिता को यहीं अमेरिका ले आये।

लड़का उस युवती के मोह-पाश में गहरा जकड़ चुका था। अतः उसने अपने माता-पिता को अमेरिका ले आने का निश्चय किया। वह उन्हें लेने के लिए अपने देश भारत आया। माता-पिता ने जब अपने पुत्र की बातें सुनी तो पहले तो उन्हें उसकी एक भी बात पर विश्वास नहीं हुआ लेकिन उसके द्वारा बार-बार वही बात दोहराने पर उन्हें विश्वास करके उसके साथ अमेरिका जाने के लिए राजी होना पड़ गया। तब उसने उनसे अपनी समस्त सम्पत्ति अर्थात् कल-कारखाने बेच डालने के लिए भी राजी कर लिया। केवल उन्होंने अपना पैतृक मकान बेचने से यह कहकर मना कर दिया कि कभी वे स्वदेश आये तों इसमें ठहर सकेंगे। इस पर पुत्र ने उसे भी बेचने की जिद कर दी कि अब वे कभी भी भारत नहीं आयेंगे। सदा के लिए वहीं अमेरिका में ही रहेंगे।

कहते हैं कि माता-पिता दुनिया में सबसे जीतने की क्षमता रखते हैं, लेकिन पुत्र के आगे उन्हें हारना पड़ जाता है। अतः उन्होंने अपने दिल पर पत्थर रखकर अपना पैतृक मकान भी बेच डाला। पुत्र ने समस्त चल-अचल सम्पत्ति का चेक बनाकर अपने पास रख लिया और अपने माता-पिता को लेकर ऐरोड्रम पर पहुंच गया। वह उन्हें वेटिंग रूम में बिठाकर यह कहकर गया कि वह इस बात की जांच करके अभी वापस आता है कि अमेरिका जाने वाला ऐरोप्लेन कब उड़ान भरेगा। दो-तीन घंटे इंतजार करने पर जब पुत्र वापस नहीं आया तब वे दोनों इन्क्वायरी ऑफिस में गये। वहां पूछने पर उन्हें बताया गया कि अमेरिका जाने वाले ऐरोप्लेन को गये तो एक घंटा बीत

चुका है। जब उन्होंने अपने बेटे का नाम बताया तो इन्क्वायरी ऑफिसर ने उन्हें बताया कि इस नाम का व्यक्ति तो उसी ऐरोप्लेन में जा चुका है। इन्क्वायरी ऑफिसर का यह उत्तर सुनकर दोनों हक्के-बक्के होकर एक दूसरे का मुंह ताकने लगे। वे यह समझ ही नहीं पा रहे थे कि आखिर बेटे ने उनके साथ ऐसी अनहोनी क्यों कर डाली?

अब जरा विचार करें कि उनकी आंखों के तारे माने गये उस इकलौते लाडले बेटे ने उनकी क्या दुर्दशा कर डाली। अरे, कल तक जो करोड़ों के मालिक थे, आज उनकी यह हालत हो गई कि उनके पास भीख मांगने के लिए एक टुटा कटोरा भी नहीं बचा था। अंततः उन्होंने अनाथालय में जाकर शरण ली। कहने की आवश्यकता नहीं कि पुत्रैषणा केवल व्यामोह है और दुख का घर है।

पुत्रैषणा के बाद वित्तैषणा पर विचार करें। धन सम्पत्ति अर्जित करने में इतना कठोर परिश्रम करना पड़ता है कि ठीक से आराम करने का समय ही नहीं मिल पाता है। इस सम्बन्ध में भी एक दृष्टान्त मनन करने योग्य है।

एक व्यक्ति था। उसका पुराना मकान काफी जर-जर हो गया, उसमें जगह-जगह इंटें खिसक गई थीं। दीवारों में दरारें पड़ गई थीं। छत भी गिरने जैसी हो गई थी। वह मकान एक तरह से रहने योग्य नहीं रह गया था। अतः उसने एक नया मकान बनाने का विचार किया। नया मकान अच्छा बनें, इसके लिए वह दिन-रात कड़ी मेहनत करने लगा। उसने न खाने-पीने की परवाह की और न आराम करने की। दिन-रात कड़ी मेहनत करने के कारण उसका स्वास्थ्य गिरने लगा। अंधेड़ तो वह पहले ही हो चुका था। ऊपर से कठोर मेहनत करने के कारण उसके शरीर के सारे अंग निस्तेज एवं शक्ति-हीन हो गये।

जब नया भवन बन गया तो वह उसमें रहने के लिए गया। अपने नये भवन की भव्यता पर वह मंत्रमुग्ध था। रात्रि को जब वह अपने शयन-कक्ष में

विश्राम करने के लिए बिस्तर पर लेटा तब उसे एक विचित्र आवाज सुनाई दी—

‘ऐ सोने वाले, जरा होश में आओ और मेरी बात को गौर से सुनो।’

वह चौंककर अपने बिस्तर पर उठ बैठा। वह अपनी आंखें खोलकर देखता है तो उसे एक विचित्र नारी दिखाई देती है। वह हड़बड़ाकर पूछता है—‘कौन हो तुम?’

‘मैं और कोई नहीं तुम्हारी आत्मा हूँ।’ उस स्त्री ने कहा।

‘मेरी आत्मा।’ उसने और भी आश्चर्यचकित होकर पूछा।

‘हां, मैं ही तुम्हारी आत्मा हूँ। अब मैं तुम्हें छोड़कर जा रही हूँ।’

‘क्यों?’ व्यक्ति ने पुनः हैरान होकर पूछा।

‘इसलिए कि अब तुम्हारा शरीर मेरे रहने योग्य नहीं रहा है।’

‘कैसे नहीं रहा?’ व्यक्ति ने घबराते हुए पूछा।

उस व्यक्ति के द्वारा ऐसा पूछने पर उस स्त्री ने कहा, ‘अच्छा, तुम मुझे यह बताओ कि तुम अपने पुराने मकान को छोड़कर इस नये मकान में क्यों आये?’

‘क्योंकि वह जरजर हो गया था। उसकी दीवारों में दरारें पड़ गई थीं। वह कभी भी गिर सकता था। इसलिए मैंने उसे छोड़ा है।’

‘तो फिर तुम भी इस बात को ठीक से जान लो कि तुम्हारा यह शरीर भी मेरे रहने योग्य नहीं रह गया है। तुमसे ठीक से उठा-बैठा तथा चला-फिरा नहीं जाता। ठीक से सुनाई नहीं देता। तुम्हारी नेत्र दृष्टि भी कमजोर हो गई है। ऊपर से तुम्हें कई असाध्य व्याधियों ने घेर लिया है। जब तुम अपने पुराने मकान में नहीं रह सकते हो तो मैं भी तुम्हारे इस जरजर शरीर में कैसे रह सकती हूँ?’ इतना कहकर उस व्यक्ति की आत्मा उसे छोड़कर चली गई।

खैर, यह तो एक काल्पनिक दृष्टांत है। इसका अर्थ यह है कि व्यक्ति धन-माया के चक्कर में इस कदर पड़ जाता है कि वह जीवन लक्ष्य को भूल जाता है। फिर ऐसे में पुरुषार्थ के लिए समय कैसे निकले?

उपर्युक्त दोनों ही ऐषणाओं की तरह युवावस्था में लोकैषणा भी हावी रहती है। ‘समाज-संसार में मैं इतना प्रसिद्ध-प्रतिष्ठित हो जाऊं कि लोग मुझे मानें, मेरी जय-जयकार करें। मैं जिधर भी जाऊं, जिनसे भी मिलूं वे मेरे आगे झुकें। वे मुझसे श्रेष्ठ और किसी को नहीं मानें। मेरी खूब वाहवाही करें।’ युवावस्था में हमारे मनोमस्तिष्क में ऐसे विचार चलते रहने के कारण पुरुषार्थ करने की दिशा में ध्यान ही नहीं जा पाता।

लोकैषणा का जुनून भी लोगों के दिलोदिमाग पर किस कदर हावी रहता है, इसे हम सिकंदर, हिटलर, चंगेज खां, नादिरशाह आदि के जीवन से जान सकते हैं, जिन्होंने इस लोकैषणा के पीछे बावले बनकर अपनी जान तक गंवा डाली। ऐसे उदाहरण एक नहीं अनेक दिये जा सकते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि एक सामान्य व्यक्ति से लेकर उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति भी लोकैषणा की भूख से पीड़ित होते हुए देखा जा सकता है। कवि, लेखक, वक्ता, नेता, अभिनेता, समाज सुधारक, ज्ञानी, ध्यानी, योगी, संन्यासी सभी लोकैषणा का शिकार बने हुए हैं।

हम अपने जीवन के विषय में और भी विचार करें। हम जीवन भर शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध— इन पांच विषयों को भोगने में ही बावले बने रहते हैं। शब्द कानों का विषय है। हम अनादिकाल से न जाने कितने शब्द सुनते आ रहे हैं। जरा विचार करें कि इतने सारे (अनन्त) शब्दों को सुनने के बावजूद हमारे कान तृप्त नहीं हो पाये, तो आज इस छोटे से जीवन में वे कैसे तृप्त हो सकेंगे? हम तो इस शब्द विषय के इतने रसिक बन जाते हैं कि कानों से ठीक से सुनाई नहीं देता है तो कान पर हाथ रखकर सुनने का प्रयास करते हैं। सुनने की मशीन लगाते हैं। अरे, क्या सुनना, वे ही

बातें, लोगों की वही बकवास, खाने, पीने, भोगने और मौज-मस्ती उड़ाने की बातों के अतिरिक्त लोग और कौन-से शब्द बोलते हैं। उन्हें न सुना जायेगा तो हमारा कौन-सा अहित हो जायेगा?

शब्द विषय की तरह हम स्पर्श विषय के भी बड़े दिवाने बने रहते हैं। स्पर्श विषय में विशेष रूप से काम-भोग आता है। यह कार्य भी हम अनादिकाल से करते आ रहे हैं। चौरासी योनियों में कितनी बार काम-भोग किया होगा, उसका कोई हिसाब नहीं। तिर्यक योनियों में तो मां-बहन, बेटी का भी कोई ख्याल नहीं रह पाता है। आज फिर वही ललक। श्रेष्ठ मानव जन्म प्राप्ति के उपरांत फिर कामोपभोग का ज्वार उठना! इसे नहीं रोक पा रहे हैं। शरीर जर्जर हो जाता है; लेकिन कामोपभोग के लिए मन बंदर की तरह छलांग लगाना बंद नहीं करता है। असंख्य बार इस स्पर्श विषय को भोगने पर भी मन शांत नहीं हुआ, तो विचार करें, अब कैसे शांत हो जायेगा?

नेत्रों के रूप विषय का भी यही हाल है। कितने सुन्दर दृश्य देखे, युवक-युवतियां देखे; लेकिन नेत्र हैं कि मानते नहीं। वे कमजोर हो जाते हैं तो चश्मा चढ़ाकर देखते हैं। अनादि काल से इतने रूप देखे, फिर भी मन नहीं भरा तो आज कैसे भर जायेगा? इस विषय में हम गम्भीरता से विचार ही नहीं करते हैं।

शब्द, स्पर्श, रूप विषयों की तरह रस विषय को भी हमने कम नहीं भोगा। जो चाहा वह खाय-पिया। दाल-सब्जी, रोटी-चावल, मक्खन-मलाई, रसगुल्ले, दाख-बादाम, पिस्ते आदि तो खाये ही, इनके अतिरिक्त हमने चौरासी में भ्रम-भूल में पड़कर अण्डा, मांस, मछली इत्यादि अभक्ष्य पदार्थों का भी सेवन कर डाला। भोजन-पानी के अतिरिक्त हमने बीड़ी-सिगरेट, तम्बाकू-गुटखा, गांजा-भांग, चरस-हेरोइन, शराब इत्यादि नशीले पदार्थों का सेवन करने में भी कोई आगा-पीछा नहीं सोचा। फिर भी हम अपनी रसेन्द्रिय को तृप्त नहीं कर पाये। अनादि काल से इन सबका सेवन करके हम रस विषय से तृप्त नहीं हो पाये तो आज हम कैसे हो सकेंगे?

कबीर

रचयिता-डॉ. अमृत सिंह यादव

धन्य धरा काशी नगर, धन्य सरोवर तीर,
मिले जहाँ नीरू नीमा को, युग द्रष्टा संत कबीर।
कबीर जन्म श्रेष्ठतम, अद्भुत रूप अनूप,
आया इस भवसिन्धु में, धर मानव का रूप।
जड़ चेतन का पारखी, मानवता का दूत,
युगों युगों के बाद ही, आते महा सपूत।
बोला तीखा सच सदा, खुलकर सबके बीच,
चेताया सारा जहाँ, सोया आँखें मीच।
कर्मकांड की भर्त्सना, आडम्बर पर चोट,
पाखण्ड घोर निंदा करी, परखी सबकी खोट।
कथनी करनी कबीर की, अद्भुत बड़ी मिशाल,
रहनी निर्मल निष्कपट, हृदय महा विशाल।
धिक्कारा पथ असत का, दिया सत्य को श्रेय,
धर्म एक हो मानवता, सबका जीवन ध्येय।
सुख की सबको कामना, चाहे दुख ना कोय,
आया जो इस जगत में, दुख से बचा न कोय।
मानव मानव सभी एक, छोटा बड़ा न कोय,
बड़ा वही संसार में, मनवा निर्मल होय।

उपर्युक्त चारों विषयों की तरह गंध विषय को भी हम अनादिकाल से भोगते आ रहे हैं, लेकिन इनके भोगने से भी हम तृप्त नहीं हो सके तो इस पर भी विचार करना चाहिए कि आज इसके भोगने से नासिका इन्द्रिय कैसे तृप्त हो पायेगी?

सारांश यह है कि मनुष्य जन्म विषय भोगों को भोगने के लिए नहीं मिला है। विषय भोगों के लिए तो पशु-पक्षी आदि योनियां होती हैं। मनुष्य जन्म तो स्वरूपबोध प्राप्त करके स्वरूपस्थिति बनाकर परम सुख और अनंत शांति प्राप्त करने के लिए मिला है। अतः हमें देह व्यवहार के कार्यों के अतिरिक्त समस्त कार्यों पर विराम देकर स्वरूपस्थिति बनाने के लिए ही कृत संकल्प होना चाहिए। □

बीजक चिंतन

साम्प्रदायिकता-विहीन सत्य

शब्द-97

अल्लाह राम जियो तेरी नाईं, जिन्ह पर मेहर होहु तुम साँईं॥ 1
 क्या मुण्डी भूईं शिर नाये, क्या जल देह नहाये॥ 2
 खून करे मिस्कीन कहाये, अवगुण रहे छिपाये॥ 3
 क्या वजू जप मंजन कीये, क्या महजिद शिर नाये॥ 4
 हृदया कपट निमाज गुजारे, क्या हज मक्के जाये॥ 5
 हिन्दू बरत एकादशी चौबीस, तीस रोजा मुसलमाना॥ 6
 ग्यारह मास कहो किन टारे, एक महीना आना॥ 7
 जो खुदाय महजीद बसतु है, और मुलुक केहि केरा॥ 8
 तीरथ मूरत राम निवासी, दुइमा किनहुँ न हेरा॥ 9
 पूरब दिशा हरी को बासा, पश्चिम अल्लह मुकामा॥ 10
 दिल में खोजि दिलहि माँ खोजो, इहै करीमा रामा॥ 11
 वेद कितेब कहा किन झूठा, झूठा जो न विचारे॥ 12
 सब घट एक एक कै लेखे, भय दूजा के मारे॥ 13
 जेते औरत मर्द उपाने, सो सब रूप तुम्हारा॥ 14
 कबीर पोंगरा अल्लह राम का, सो गुरु पीर हमारा॥ 15

शब्दार्थ—जियो= जीव, चेतन। नाईं= समान।
 मेहर= मेह, प्रेम, कृपा। साँईं= स्वामी। खून= हत्या,
 जीववध। मिस्कीन= दीन, फकीर। वजू= वुजू, नमाज
 के पहले विधिपूर्वक हाथ, पैर, मुख आदि धोना।
 मंजन= मज्जन, स्नान। हज= हज्ज, संकल्प करना,
 नियत काल पर काबे के दर्शन एवं प्रदक्षिणा करना,
 मक्के की यात्रा। मक्के= मक्का, अरब का एक प्रधान
 नगर जो हजरत मुहम्मद का जन्म स्थान है तथा
 मुसलमानों का मुख्य तीर्थस्थल है। बरत= व्रत,
 उपवास। तीस रोजा= तीस दिन के रमजान महीने में
 दिन में उपवास रखना। आना= अन्य, दूसरा, शुद्ध।
 हेरा= खोजना। करीमा= करम यानि दया करने वाला
 ईश्वर। घट= शरीर, दिल। लेखे= समझे, समझना
 चाहिए। उपाने= उत्पन्न हुए। पोंगरा= बालक, बच्चा,
 पुत्र, पैगंबर, अवतार।

भावार्थ—हे मनुष्य! अल्लाह और राम भी तेरे
 समान जीव ही हैं। हे मनुष्य! तू सभी ज्ञान-विज्ञान का
 स्वामी है। तू जिस पर कृपा कर दे उसी को ईश्वर बना
 दे॥ 1॥ जड़ मिट्टी-पत्थरादि की पिंडियों के सामने सिर
 झुकाने से क्या कल्याण होगा, और शरीर को गंगादि
 नदियों में धोने एवं स्नान करने मात्र से भी क्या लाभ
 होगा?॥ 2॥ बलि और कुर्बानी के नाम पर करे जीव-
 हत्या और कहलाये दीन-गरीब एवं विनम्र फकीर।
 वस्तुतः यह विनम्रता अपने दोषों को छिपाने का सिर्फ
 एक तरीका है॥ 3॥ केवल वुजू, जप, स्नान करने से
 और मसजिद में सिर झुकाने से क्या मिलने वाला है?
 यदि हृदय में कपट-छल बनाये रखे तो नमाज अदा
 करने तथा मक्के की यात्रा करने से भी क्या लाभ
 होगा?॥ 4-5॥ हिन्दू लोग वर्ष में चौबीस एकादशी व्रत
 रहते हैं और मुसलमान लोग रमजान महीने के तीस
 दिनों में रोजा रहते हैं, तो वर्ष में केवल एक ही महीना
 के दिनों को पवित्र बताकर ग्यारह महीने किसने
 अपवित्र सिद्ध कर उन्हें व्रत के दिनों से अलग कर
 दिया?॥ 6-7॥ यदि खुदा मसजिद में बसता है तो
 उसके बाहर का मुल्क किसका है? और यदि तीर्थ,
 मंदिर तथा मूर्तियों में ही राम निवास करता है तो उनसे
 अलग फैले हुए विशाल संसार में कौन रहता है? इन
 हिन्दू-मुसलमानों में से किसी ने भी सत्य की खोज नहीं
 की॥ 8-9॥ हिन्दू प्रायः पूर्व मुख करके पूजा करते हैं
 और भारतवर्ष में मुसलमान पश्चिम मुख करके नमाज
 पढ़ते हैं तो इससे यह कैसे मान लिया जाये कि हरि पूर्व
 दिशा में बसता है और अल्लाह पश्चिम दिशा में? हे
 मनुष्यो! अपने दिल में खोजो, केवल अपने दिल में
 खोजो, तो पाओगे कि अपने दिल में रमने वाला चेतन-
 नूर ही दिलकश, दिलदार एवं दिलआराम रहीम और
 राम है॥ 10-11॥ वेद और किताब को किसने झूठा
 कहा है? झूठा तो वह है जो बिना विचार किये वेद-
 किताबों की रट लगाता है॥ 12॥ मनुष्य को चाहिए कि
 वह सभी शरीरों में एक समान आत्मारूपी परमात्मा को
 देखे और दूसरों के दिल दुखाने एवं उनकी हत्या करने

से भय करे तथा इस पाप कर्म से सर्वथा दूर हो ॥ 13 ॥
हे मनुष्य! संसार में जितने औरत और मर्द हैं सब
तुम्हारे स्वरूप हैं ॥ 14 ॥ कबीर साहेब कहते हैं कि जो
अल्लाह और ईश्वर के पैगंबर तथा अवतार माने गये हैं
वे गुरु और पीर के समान हमारे आदरणीय हैं ॥ 15 ॥

व्याख्या—पंद्रह पंक्तियों का यह शब्द जैसे
विशाल है वैसे विशाल भावना से व्याप्त अत्यंत
हृदयस्पर्शी है। ईश्वर, ईश्वरीय मजहब तथा ईश्वरीय
किताब को लेकर संसार में हद दर्जे की जाहिली है।
धर्म, जो मानवता है, रहमदिली एवं सहृदयता है, वह
बाह्याचार एवं बाह्याडंबर में ढक गया है। मजहब वालों
ने ईश्वर को जीव से अलग कर दिया है, इसलिए वे
प्रायः ईश्वर की तो भक्ति करते हैं और जीव को पीड़ा
देते हैं। देखिए हैवानी कि देवता तथा ईश्वर को खुश
करने के लिए ऊंट, भेड़े, बकरे, गायें, भैंसे, मुरगे आदि
जानवरों की हत्या की जाती है। ईश्वर को जीव से
अलग कर देने का परिणाम यह हुआ कि हमने धरती
पर के प्राणधारियों एवं इनसानों तक की हत्या करने में
हिचक नहीं की और आकाश में, शून्य में ईश्वर को
पुकारते रहे। हमने प्रत्यक्ष ईश्वर—प्राणधारियों के साथ
बे-रहमी की और शून्य की प्रार्थना करते रहे।

कबीर साहेब कहते हैं कि ईश्वर जीव का गुण
विशेष मात्र है। जब जीव निष्काम एवं आप्तकाम हो
जाता है, तब वह ईश्वर है। इसीलिए वे इस शब्द के
शुरू में ही कहते हैं—“अल्लाह राम जियो तेरी नाँई”
अर्थात् अल्लाह और राम तेरे समान जीव ही हैं। इसका
अभिप्राय है कि कृतार्थ जीव ही अल्लाह और राम हैं।
जो व्यक्ति इस जीवन में शोक, मोह एवं भय से मुक्त
हो गया है, वही मानो ईश्वर है, और वह तुम्हारे समान
ही है। तुम भी वैसे हो सकते हो। क्योंकि तुम्हारा
स्वरूप भी उसी प्रकार है। वस्तुतः सब जीवों का
स्वरूप शिव है, परन्तु वे अपने स्वरूप को नहीं
समझते, इसलिए सामान्य जीव बने भटक रहे हैं। जब
उनमें कोई अपने स्वरूप को समझ लेता है और
समझकर संसार से निष्काम हो जाता है तब वह मानो
शिव हो जाता है। उसी को आप अल्लाह एवं राम कह

सकते हैं। यदि इस तथ्य को समझ लिया जाये कि यह
जीव ही ईश्वर है तो हम जीव मात्र के प्रति उत्तम
व्यवहार करने लगे और अपने आप को संसार की
कामनाओं के दलदल से निकाल लें।

लेकिन मजहबी लोग कहते हैं कि जीव से ईश्वर
अलग है। नाना मत के लोग तो पानी, पत्थर, पेड़,
पहाड़, गोबर, मिट्टी को देवी-देवता बना देते हैं, फिर
चांद, सूरज और सितारों को देवी-देवता मान लेना तो
अधिक सहज है। लोग अपनी आत्मा को छोड़कर शून्य
में ईश्वर की कल्पना करते रहते हैं। इन बातों पर मानो
व्यंग्य करते हुए कबीर साहेब कहते हैं “जिन्ह पर मेहर
होहु तुम साँई” हे मनुष्य! तू ही सारे ज्ञान-विज्ञान का
साँई है, तू ही तो सारी कल्पनाओं का, मनोमय का
स्वामी है, अतएव तू जिस पर कृपा कर दे उसी को
देवी-देवता तथा भगवान बना दे। जब तूने पशु की
टट्टी-गोबर को गौरी-गणेश बनाकर रखा, तब उनकी ही
पूजा चल पड़ी। तूने मिट्टी, पत्थर तथा धातु के देवी-
देवता बनाये और लोग उनके सामने घुटने टेककर भोग
और मोक्ष मांगने लगे। तूने आकाश में ईश्वर का संकेत
किया तो उधर लाखों-करोड़ों हाथ उठ गये इबादत एवं
प्रार्थना में। हे मनुष्य! तू देवताओं का देवता तथा
ईश्वरों का ईश्वर है। सारे देवी-देवता तथा ईश्वर
मनुष्य की कृपा पर पल रहे हैं। मनुष्य हाथ खींच ले
तो सारे देवी-देवता तथा ईश्वर गिर जायें। उनकी
मान्यताएं समाप्त हो जायें। उनको कोई पूछने वाला भी
न रहे। “जिन्ह पर मेहर होहु तुम साँई” बड़ा मार्मिक
वचन है। हे मनुष्य! तू सबका स्वामी है। तू जिस पर
कृपा कर दे उसी को भगवान बना दे। श्री चंडीदास जी
ने ठीक ही कहा है—“हे भाई! सुनो, तू सबके ऊपर है
और तेरे ऊपर कोई नहीं है।”¹

इसलिए साहेब कहते हैं कि “क्या मुण्डी भूईं शिर
नाये, क्या जल देह नहाये।” अपने बनाये देवी-
देवताओं की मनौती एवं प्रार्थना कर जमीन में सिर
पटकने से क्या फायदा है! या मिट्टी-पत्थरादि की

1. शूनो मानुष भाई, सबार उपरे मानुष सत्य, ताहार उपरे नाई ।

पिंडियों के सामने माथा रगड़ने से क्या मिलेगा ! लोग कहते हैं कि गंगा, यमुना, सरयू, नर्मदा आदि में नहाने से सारे पाप कट जाते हैं। साहेब कहते हैं कि हे धार्मिक कहलाने वालो ! तुम लोग संसार के शिक्षित-अशिक्षित भोले लोगों को क्यों धोखा देते हो? पाप तो मन में संस्काररूप से जमे होते हैं वे पानी में नहाने से कैसे कट सकते हैं?

“खून करे मिस्कीन कहाये, अवगुण रहे छिपाये।” लोग धर्म के नाम पर जीव हत्या करते हैं। ईश्वर को खुश करने के लिए हजारों-लाखों ऊंट, बकरे, भेड़े काट दिये जाते हैं, परन्तु काटने वाले कहते हैं कि हम तो मिस्कीन हैं, गरीब हैं, दीन हैं, ईश्वर के सामने नाचीज हैं। इसका अर्थ यह है कि ये ईश्वर के नाम पर हत्या करने वाले बड़े विनम्र भक्त बनते हैं। कबीर साहेब कहते हैं कि यह इनका भक्त बनना, विनयी बनना एक ढोंग है जिससे इनके हत्या के दोष पर लोगों की दृष्टि न जाये। यह खूनी विनय दो चेहरों वाली तस्वीर है। अन्दर में इनके घोर निर्दयता है और बाहर से भक्ति का स्वांग है। यह अपने अवगुणों को छिपाने का तरीका है।

“क्या वजू जप मंजन कीये, क्या महजिद शिर नाये। हृदया कपट निमाज गुजारे, क्या हज मक्के जाये।” नमाज पढ़ने से पहले विधिपूर्वक हाथ, पैर, मुख आदि का धोना वुजू है, माला या तसबीह पर या यों ही किसी नाम, मन्त्र एवं कलमा को जबान या मन से दोहराना जप है, मंजन कहते हैं दांत मांजने के चूर्ण को, परन्तु यहां मंजन मज्जन का तद्भव रूप है, मंजन का शुद्ध रूप है मज्जन। मज्जन कहते हैं स्नान करने को। साहेब कहते हैं कि तुम वुजू करते हो, जप करते हो, स्नान करते हो और मसजिद में जाकर सिर झुका-झुकाकर नमाज पढ़ते हो, परन्तु यह सब करके क्या फल मिला जब ईश्वर के नाम पर बेरहमी का काम करते हो? जिस ईश्वर के नाम में पचासों बार करम और रहम जोड़ते हो, उसी को खुश करने के लिए बे-करम और बे-रहम का काम करते हो तो तुम्हारा सारा बाह्याचार किस मतलब का रहा? हृदय में कपट

कतरनी है तो नमाज अदा करने से क्या फायदा? मुख से तो कहते हो ‘रहीम’ और मन में रखते हो ‘बे-रहमी’ तो उपासना का क्या मतलब हुआ ! जब किसी प्राणी के गले पर छूरी रखकर रेतते हो तो कहते हो कि शुरू करता हूं उस अल्लाह के नाम से जो निहायत रहम वाला है। यह कितना कपट-चाल है? रहीम कभी बेरहमी से खुश नहीं हो सकता। इस ढंग का हिंसात्मक व्यवहार रखकर कभी उपासना सफल नहीं हो सकती। “क्या हज मक्के जाये।” हज एवं हज्ज के अर्थ सुख एवं लाभ भी होते हैं, परन्तु इसका ज्यादातर अर्थ मक्के की यात्रा करना है। परन्तु मक्के जाकर भी वही बात होती है। वहां ईश्वर के नाम पर लाखों जानवर काटे जाते हैं।

हिन्दू वर्ष भर में चौबीस एकादशी व्रत रहते हैं, उन दिनों उपवास रहते हैं और मुसलमान वर्ष में रमजान के महीने में प्रतिदिन दिन भर कुछ नहीं खाते-पीते, केवल रात में खाते-पीते हैं। चलो, साल में कुछ दिन दोनों तपस्या कर लेते हैं। वैसे स्वास्थ्य की दृष्टि से पन्द्रह-पन्द्रह दिनों में उपवास रखने का नियम अच्छा है, परन्तु एकबारगी एक महीना तक दिन में न खाना, केवल रात में खाना एक अजीब बात है। परन्तु इतना तो दोनों को समझना चाहिए कि केवल चौबीस एकादशी के दिन तथा रमजान महीने के तीस दिन ही पवित्र नहीं हैं, किन्तु वर्ष के सारे दिन एक समान पवित्र हैं। हमारा अंधविश्वास कहीं ऐसा नहीं जुड़ जाना चाहिए कि दूसरे दिनों को हम अपवित्र या घटिया मान लें।

हिन्दू और मुसलमान मंदिर और मसजिद को लेकर बड़ा लड्डमलड्ड करते रहते हैं। ये दोनों कहीं-कहीं कुछ ईट-पत्थर के रोड़े जोड़ लेते हैं, और इनके ईश्वर वहां आकर जम जाते हैं फिर चाहे उनको लेकर इनसान के खून की नदी बहे तो भी इनके ईश्वर वहां से नहीं हटते। ये हिन्दू और मुसलमान के ईश्वर और देवी-देवता कितनी सार्वजनिक जमीनों पर, किन्हीं की व्यक्तिगत जमीनों पर, राहों और सड़कों पर ऐसे जमकर बैठते हैं कि मजाल है इन्हें कोई हटा सके। भले जनता को, राहगीरों को कष्ट हो, परन्तु ये वहां से नहीं हटेंगे।

यदि कहीं सरकार इन्हें हटाना चाहे तो धर्म और इसलाम खतरे में है कहकर नारे लगाये जाते हैं, सरकार की छवि खराब करने का प्रयत्न किया जाता है। कितने ही मंदिर और मसजिद इनसानी दोस्ती की राह में रोड़े ही नहीं खाईं और पर्वत बनकर खड़े हो जाते हैं। इतना ही नहीं, इनको लेकर मैदाने-जंग में इनसान का खून भी बहने लगता है। ईश्वर और देवता को रहने की जगह न मिलने से ये दयावान हिन्दू और मुसलमान उनके लिए मंदिर और मसजिद बनाते हैं तब कहीं बेचारे ईश्वर और देवता अपने सिर छिपाने की जगह पाते हैं। साहेब कहते हैं कि यदि खुदा मसजिद में रहता है तो मसजिद के बाहर के मुल्क में कौन रहता है? क्या उसमें शैतान रहते हैं? और यदि तीर्थ, मंदिर तथा मूर्तियों में ईश्वर तथा देवता रहते हैं तो उनसे बाहर के संसार में कौन रहता है? इतनी-सी अक्ल लोगों में नहीं आ रही है। ईश्वर का असली स्थान न हिन्दू खोजते हैं और न मुसलमान खोजते हैं। जो इनसान से लेकर सूक्ष्म कीट तक के दिलों में बसा है उसे ये मंदिर-मसजिद की दीवारों के बीच में बन्द कर देना चाहते हैं।

“पूरब दिशा हरी को बासा, पश्चिम अल्लाह मुकामा। दिल में खोजि दिलहि माँ खोजो, इहै करीमा रामा।” हिन्दू द्विजातियों में संध्योपासना में यह विधान है कि सुबह पूर्व तरफ मुख करके, दोपहर उत्तर तथा शाम को पश्चिम तरफ मुख करके संध्योपासना की जाये। संध्योपासना में सूर्य का महत्त्व होता है। सूर्य जिधर हो उधर मुख करके उपासना करनी चाहिए। परन्तु साधारण हिन्दू जनता न यह विधान जानती है और न विधिपूर्वक संध्योपासना करती है। कोई कर्मनिष्ठ ब्राह्मण कहलाने वाला लाखों में एक होगा जो एक-दो समय कर लेता होगा। ज्यादातर हिन्दू सुबह से दोपहर तक स्नान करने के बाद पूर्व तरफ मुख करके बैठ जाते हैं और कुछ पूजा कर लेते हैं। मुसलमान जिस तरफ मुख करके नमाज पढ़ते हैं उसे क़िबला कहते हैं और वह मक्का में स्थित काबा है। इस प्रकार मुसलमानों में मक्का एवं काबा मुख्य पूज्य स्थल माना है। काबा भारत से पश्चिम है। इसलिए वे पांचों वक्त

पश्चिम मुख करके नमाज पढ़ते हैं। उनकी मसजिदें भी ऐसी ही बनती हैं जिससे लोग जब दीवार की तरफ मुख करके खड़े हों तो उधर काबा पड़ता हो। कबीर साहेब कहते हैं कि इन ऊपरी बातों को लेकर कोई यह न समझ ले कि पूर्व में हिन्दुओं के ईश्वर हरि रहते हैं तथा पश्चिम में मुसलमानों के ईश्वर अल्लाह रहते हैं। ये काबा-कैलाश, मंदिर-मसजिद बहुत बाहरी हैं। इनमें परम सत्ता को देखने वाले भोले बालक के समान हैं। साहेब कहते हैं “दिल में खोजि दिलहि माँ खोजो, इहै करीमा रामा।” हे लोगो ! अपने दिल में खोजो, केवल अपने दिल में खोजो। यह जो सभी दिलों में चेतन निवास करता है यही परम तत्त्व है। इसी को ईश्वर, अल्लाह, राम, रहीम, गॉड कुछ भी कह सकते हो। लोग ऊपर वाले को खोजते हैं, भीतर वाले पर ध्यान नहीं देते। ऊपर वाला तो केवल कल्पित है, भीतर वाला अनुभूत स्वसत्ता है, बल्कि कहना चाहिए कि वही सबका अनुभविता, कल्पक एवं ज्ञाता है। “दिल में खोजि दिलहि माँ खोजो, इहै करीमा रामा।” यह कबीर साहेब के महासूत्रों में से एक है। जो सभी के दिल में चेतनरूपी भगवान को समझता है, वह किसी दिल को दुखा नहीं सकता। धोखा यही है कि लोग पत्थर के बने मंदिर-मसजिद में तो भगवान होने का भ्रम कर लेते हैं, किन्तु प्राणियों के दिल में उसे नहीं देख पाते। इसी का फल है कि वे मंदिर-मसजिद-जैसी बाहरी चीजों की सुरक्षा के लिए लड़ते हैं और ईश्वर के असली स्थान जो प्राणियों के दिल हैं उन्हें दुखाते हैं। कबीर साहेब की पूरी वाणियों में इसी सत्य एवं तथ्य पर जोर है कि ईश्वर प्राणियों के हृदय में है, क्योंकि यही वास्तविकता है और यही मानवता तथा सच्चे धर्म—करुणा के लिए प्रेरक है। यद्यपि यह बात सभी मजहबों एवं संप्रदायों की किताबों में लिखी है, तथापि लोग अपने अज्ञान, अहंकार तथा मिथ्या स्वार्थ में पड़कर उन बातों से अपनी नजरें घुमाकर वही रास्ता अपनाते हैं जो इनसान के लिए बुरा है।

“वेद कितेब कहा किन झूठा, झूठा जो न विचारे।” कबीर साहेब की खरी बातें सुनकर लोग उन्हें उलाहना देने पहुंच गये और कहने लगे कि आप तो

वेद तथा किताब को झूठा कहते हैं। साहेब ने उन्हें समझाया कि वेद-किताब को कौन झूठा कहता है? झूठा तो वह है जो उन पर विचार नहीं करता; और आंख मूंदकर प्रमाण मानता है। सभी मजहब वाले अपनी-अपनी किताबों को ईश्वरप्रदत्त, आप्तवचन एवं स्वतः प्रमाण मानते हैं। नाना मत के धर्मशास्त्र नाम की पुस्तकों में हजारों वर्षों के बीच में जो कुछ सही-गलत लिखा गया है उन सब को प्रभुवाणी, आप्तवचन एवं स्वतः प्रमाण के नाम पर लोगों के गले जबर्दस्ती उतारने की चेष्टा की जाती है। धर्मशास्त्रों में कितनी ऐसी बातें हैं जो भ्रमपूर्ण एवं बिलकुल गलत हैं। कितनी बातें ऐसी हैं कि जब वे लिखी गयीं तब उपयोगी रही होंगी, परन्तु आज वे बिलकुल असंगत हैं, फिर भी वे धार्मिक कहे जाने वाले लोगों द्वारा जनता पर मढ़ी जाती हैं। साहेब कहते हैं कि मैं वेद, कुरान, बाइबिल तथा समस्त धर्मशास्त्रों को आदर देता हूँ और यह चाहता हूँ कि उनमें आयी हुई बातों को आंख मूंदकर न माना जाये, किन्तु उन पर विचारकर जो सत्य हों, कारण-कार्य-व्यवस्था के अनुकूल युक्तिसंगत, विश्व के नियमों से समर्थित तथा आज के लिए प्रासंगिक हों, उनका जीवन में उपयोग किया जाये। और जो उनमें युक्ति तथा विवेक-विरुद्ध हों, आज के संदर्भ में अनुपयुक्त तथा हानिकारी हों, उन्हें छोड़ दिया जाये। इस प्रकार वेदों-किताबों तथा धर्मशास्त्रों की बातों में मैं विचार करने की राय देता हूँ। मैं यह भी नहीं कहता हूँ कि वेद-किताब झूठे हैं। मैं कहता हूँ कि वे झूठे हैं जो उनकी बातों पर विचार न कर आंख मूंदकर मानते हैं। अब कोई यदि बारम्बार यही जोर देता है कि मेरे धर्मशास्त्र में लिखा है, यह प्रभुवचन है, किन्तु वे ऐसी बातें होती हैं, जो सत्यज्ञान तथा मानवता—दोनों में बाधक होती हैं और यदि ऐसी बातें ईश्वर तथा वेद-किताब के नाम पर कोई जबर्दस्ती गले उतारने के चक्कर में पड़ता है, तब मैं कहता हूँ “वेद कितेब दोउ फंद पसारा, तेहि फन्दे परु आप बिचारा”¹ या “नौधा बेद कितेब हैं, झूठे का

1. बीजक, शब्द 32 ।

बाना।”² अतएव इसका यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि मैं वेद-किताब को झूठा कहता हूँ। मैं वेद-कितेब को आदर देता हूँ, परन्तु उनकी बातें विचारपूर्वक मानने तथा न मानने की राय देता हूँ।

“सब घट एक एक कै लेखे, भय दूजा के मारे।” सभी देहों में एक-एक जीव निवास करते हैं। इन्हीं जीवों को चेतन, आत्मा आदि कहते हैं। अपने शुद्ध रूप में यही परमात्मा हैं। इन्हें कष्ट देने से भय करो। किसी का दिल न दुखाओ। इस पंक्ति में यह महत्त्वपूर्ण बात है कि सभी देहों में एक-एक आत्मा हैं जो एक दूसरे से सर्वथा अलग हैं। कबीर साहेब यथार्थवादी हैं। वे हर बात में तथ्य कहते हैं। लोग कहते हैं कि सब में एक ही आत्मा है। साहेब कहते हैं कि यह बात गलत है। सब देहों की आत्माएं एक दूसरे से अलग हैं।³ हां, सभी जीवों एवं आत्माओं के लक्षण एक हैं। यह ध्यान रखना चाहिए कि सब देहों में रहने वाले चेतन जीवों के गुण एक हैं, परन्तु व्यक्तित्व सबके अलग-अलग हैं। इस पंक्ति में दूसरी बात है कि दूसरों को कष्ट देने से भय करो। पहली बात तो यह है कि यह मानवता नहीं है कि दूसरों को कष्ट दिया जाये, दूसरी बात है कि यदि हम किसी को कष्ट देंगे तो कष्ट पायेंगे। इसलिए हमें दूसरों को कष्ट देने से विरत होना चाहिए।

“जेते औरत मर्द उपाने, सो सब रूप तुम्हारा।” संसार में जितने औरत तथा मर्द पैदा होते हैं वे सब तुम्हारे रूप हैं। यहां सभी जीवों की तात्त्विक एकता पर प्रकाश डाला गया है। साहेब कहते हैं कि स्त्री और पुरुष तो केवल शरीर के लक्षण हैं, किन्तु उनमें निवास करने वाले जीव एक समान हैं। उनके मूल लक्षणों में कोई अन्तर नहीं है। कबीर साहेब जैसे तथाकथित ब्राह्मण-शूद्र, हिन्दू-मुसलिम में एकत्व देखते हैं वैसे स्त्री-पुरुष में भी एकत्व देखते हैं। वे विप्रमतीसी के

2. बीजक, शब्द 113 ।

3. केन उपनिषद् के ऋषि भी कहते हैं “भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ।” (2/5)
अर्थात्—विवेकी पुरुष प्राणी-प्राणी में सत्य को समझकर इस लोक से प्रयाण करके अमर हो जाते हैं ।

आखिर में एक ही लपेट में कह जाते हैं कि सब दिलों के भीतर रमने वाले चेतन तत्त्व को क्या कहोगे? उसे काला कहोगे कि गोरा, लाल कहोगे कि पीला, गरम कहोगे कि ठंडा, अवर्ण कहोगे कि सवर्ण, हिन्दू कहोगे कि तुरुक, बूढ़ा कहोगे कि बालक, नारी कहोगे कि पुरुष? जरा, इस पर विचार करो। साहेब यहां कहते हैं कि सब तुम्हारे स्वरूप हैं। इसके पहले की पंक्ति में सद्गुरु ने चेतन जीव के व्यक्तित्व की भिन्नता पर प्रकाश डाला था और इस पंक्ति में सब चेतनों के गुणों की एकता पर प्रकाश डालते हैं और वे कहते हैं कि उसमें नारी-पुरुष का भी भेद नहीं है। लिंग-भेद देह के लक्षण हैं, जीव सबमें समान एवं सजाति हैं।

“कबीर पोंगरा अल्लह राम का, सो गुरु पीर हमारा।” पोंगरा कहते हैं बालक, बच्चा एवं पुत्र को। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि मानते हैं कि हमारे राम, कृष्ण, मुहम्मद, ईसा आदि ईश्वर के अवतार, पैगम्बर एवं पुत्र हैं। साहेब कहते हैं कि ठीक है, मैं उनको अपने गुरु-पीर मानता हूँ। कबीर साहेब इस ग्रन्थ में अवतारवाद तथा पैगम्बरवाद का बारम्बार खंडन कर चुके हैं। इसलिए यहां वे पुनः खंडन के माध्यम से नहीं कहते हैं, किन्तु मंडन के माध्यम से अवतारवाद तथा पैगम्बरवाद का निषेध कर देते हैं। कबीर साहेब कहते हैं कि आप लोग राम तथा कृष्ण को अवतार मानो, मुहम्मद को पैगम्बर मानो, ईसा को ईश्वर-पुत्र मानो, आप लोगों की मर्जी है। मैं तो उन्हें अपना गुरु-पीर मानता हूँ। यहां कबीर साहेब उक्त महापुरुषों को गुरु-पीर कहकर उनका महान आदर करते हैं और साथ-साथ इसी के माध्यम से परोक्षरूप में अवतारवाद तथा पैगम्बरवाद का खंडन कर देते हैं।

सद्गुरु ने इस शब्द के शुरू में ही कह दिया है “अल्लाह राम जियो तेरी नाई।” सद्गुरु कबीर जीव से अलग ईश्वर नहीं मानते हैं। परन्तु यहां अंतिम पंक्ति में अल्लाह तथा राम के पोंगरे को वे अपना गुरु तथा पीर कह देते हैं। यही उनके संत-हृदय की पहचान है। अल्लाह और राम दोनों का अर्थ है ईश्वर। वे हिन्दू

और मुसलमान दोनों के संतोष के लिए अल्लाह और राम अरबी तथा संस्कृत के शब्दों का प्रयोग एक साथ करते हैं। लोगों को केवल अपनी राय दी जा सकती है, किन्तु उनके विचारों को बलपूर्वक बदला नहीं जा सकता। कबीर साहेब ने पूरे शब्द में अपने विचार कह दिये। उन्होंने बता दिया कि मनुष्य की आत्मा ही ईश्वर है, भगवान है, परमात्मा है, वह उसे छोड़कर बाहर कुछ नहीं पायेगा। परन्तु इतना कहने के बाद भी वे जानते थे कि कुछ ही लोग इस बात को समझ सकेंगे। शेष लोग तो अपनी लकीर पर ही चलते रहेंगे। वे मानेंगे कि आत्मा से अलग परमात्मा है और राम-कृष्ण उसके अवतार हैं, मुहम्मद उसके पैगम्बर हैं तथा ईसा उसके पुत्र हैं। इसी प्रकार अन्य मत वाले भी मानते रहेंगे। साहेब कहते हैं कि ठीक है भाई! आपके अवतार तथा पैगम्बर को मैं आदर देता हूँ। मैं उन्हें अपना गुरु-पीर मानता हूँ। वे हमारे पूर्वज हैं, आदरणीय हैं। परन्तु मैं किसी को अवतार तथा पैगम्बर नहीं मानता। मनुष्य के ऊपर कोई ईश्वर नहीं है जो अपना दूत भेजकर संसार में कोई अपना मतवाद चलाता हो। सारे सम्प्रदाय-प्रवर्तक महापुरुष केवल मानव हैं। उन्हें अपने समय में लोक-कल्याण की जो सूझ-बूझ आयी उसे उन्होंने जनता के सामने रखा। जनता ने एवं हर महापुरुष के अनुयायियों ने अपने-अपने महापुरुष को अवतार, पैगम्बर, ईश्वर-पुत्र आदि बना दिया। इसके पीछे ही सारी सांप्रदायिकता पनपती रही। श्रद्धा अच्छी बात है, परन्तु अधिक श्रद्धा हिंसा पैदा करती है। जब कुछ लोग किसी महापुरुष को एकलौता सत्य का ठेकेदार, तथाकथित अवतार एवं पैगम्बर मान लेते हैं, तब उससे हटकर दूसरे की बात भी सुनना नहीं चाहते। वे अपने कथित पैगम्बर को स्वर्ग का द्वार तथा दूसरे को नरक का द्वार मानने लगते हैं। धर्म के नाम पर सारी जाहिली इसी से पैदा होती है। अवतारवाद तथा पैगम्बरवाद असत्य तो हैं ही, अहितकर भी हैं। ये किसी एक में अतिश्रद्धा उत्पन्न कर दूसरे की अवहेलना कराने वाले बन जाते हैं। इसलिए

साहेब कहते हैं कि जिसे आप लोग अवतार तथा पैगम्बर मानते हैं, उन्हें मैं गुरु-पीर मानता हूँ। गुरु-पीर केवल मनुष्य होता है।

अवतार तथा पैगम्बर के पीछे तो यह झांसा रहता है कि उसकी सब बातें माननी पड़ेंगी। वह जो कुछ कहता है वह सब-का-सब बिलकुल तय है, क्योंकि वह सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान सत्ता का सन्देशवाहक है। परन्तु गुरु-पीर की बातों में ऐसा नहीं है। गुरु-पीर मानव है। उसकी बातों पर विचार किया जा सकता है। गुरु के गलत आचरण तथा गलत बातों को त्याग देने का अधिकार है। हमें चाहिए कि हम अपने पूर्वजों पर श्रद्धा रखें, परन्तु उनकी गलत बातों को न लें, उनकी केवल अच्छी बातों को लें। श्रुति के ऋषि भी कहते हैं—“जो हमारे अच्छे आचरण हैं उन्हें ग्रहण करो और जो गलत आचरण दिखें उन्हें न लो।”¹

संसार के महापुरुषों को कबीर साहेब कहते हैं कि वे हमारे गुरु-पीर हैं—यह अर्थ किसी को बुरा भी लग सकता है और वह कह सकता है कि कबीर साहेब तो स्वयं परम गुरु थे। वे दूसरे किसी को अपना गुरु नहीं कह सकते। परन्तु ऐसे विचार वाले यह ध्यान रखें कि कबीर साहेब उदार सन्त थे। वे अपने श्रोता तक को गुरु कह देने के लिए तैयार हो जाते हैं जो सत्य को समझता है “कहहिं कबीर जो अबकी बूझै, सोई गुरु हम चेला।”² फिर अपने पूर्वजों को गुरु-पीर कह देना तो बहुत ही शोभनीय है। इस कथन से कबीर साहेब की महत्ता घटती नहीं, किन्तु बढ़ती है। और यह भी तथ्य है कि सभी महापुरुष अपने पूर्वजों से कुछ-न-कुछ पाते ही हैं। उनकी अच्छाइयों से तो उन्हें मिलता ही है उनकी गलतियों से भी सावधानी मिलती है। और फिर जिस लहजे में यहां सद्गुरु ने “सो गुरु पीर हमारा” कहा है, वह बड़ा मोहक, शालीनतापूर्ण एवं सर्वजन प्रेरक है।

1. यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि ।
(तैत्तिरीय उपनिषद्, 1/11)
2. बीजक, शब्द 11

एकता बनाये रखें

रणभूमि में रावण जब मृत्यु शय्या पड़ा अंतिम सांसों ले रहा था तब उन्होंने राम से कहा था—

राम मैं तुमसे हर बात में श्रेष्ठ हूँ—

तुम क्षत्रिय हो और मैं ब्राह्मण। ब्राह्मण क्षत्रिय से श्रेष्ठ होता है।

आयु में भी मैं तुमसे बड़ा हूँ।

मेरा कुटुंब तुम्हारे कुटुंब से बड़ा है।

मेरा वैभव तुम्हारे वैभव से बड़ा है।

तुम्हारा तो सिर्फ महल ही स्वर्णजटित होगा, जबकि मेरी तो पूरी लंका ही स्वर्ण नगरी है।

बल और पराक्रम में भी मैं तुमसे श्रेष्ठ हूँ।

ज्ञान और तपस्या में भी मैं तुमसे श्रेष्ठ हूँ।

मेरा राज्य तुम्हारे राज्य से बड़ा है।

तुम अभी सिर्फ एक राजकुमार हो और मैं लंका का राजा हूँ।

हर बात में तुमसे श्रेष्ठ होने के बावजूद युद्ध में मेरी जो हार हुई उसके पीछे सिर्फ एक ही कारण है और वह यह कि तुम्हारा भाई तुम्हारे साथ है और मेरा भाई मेरे विरुद्ध।

याद रखें, बिना भाई के जब रावण जैसा बलवान-विद्वान हार सकता है तो आप किस घमंड में हैं। इसलिए भाई से कभी वैर-विरोध न करें। भाई को साथ रखिये, भाई के साथ रहिये और सदा आगे बढ़ते रहें। सभी को हरसंभव कोशिश करना चाहिए कि परिवार टूटने न पाये। परिवार में समता-एकता बनी रहे।

एकता बनाये रखें, क्योंकि—

किसी भी पेड़ के कटने का किस्सा न होता।

अगर कुल्हाड़ी के पीछे लकड़ी का हिस्सा न होता।

प्रस्तुति-हीरेन्द्र दास

क्या वेद नसली वर्गीकरण का गवाह है?

लेखक—श्री धर्मदास

ऐसा कहा जाता है कि भारत का समाज युग-युग से वर्गीकृत रहा है, कभी वर्ण इकाई थी तो कभी जाति। सामाजिक वर्गीकरण भारत के समाज की विशेषता मानी गई है। वर्गों के नामकरण युग-युग में भिन्न-भिन्न प्रकार से हुए हैं। भारत का समाज मूलतः विदेशी भारतविदों के बीच, हिन्दू जाति के नाम से पहचान की जाती है जबकि भारत की साहित्यिक रचनाओं में 'हिन्दू' शब्द का पूर्णरूपेण अभाव पाया गया है। अर्थात् सामाजिक वर्गीकरण अथवा विभाजन हिन्दू समाज के मौलिक चरित्र के अभिन्न सिद्धान्त के रूप में विख्यात है।

यह जानने की उत्सुकता हो सकती है कि भारत से बाहर की दुनिया में सभ्य अथवा असभ्य किसी समाज में क्या जातीय तत्त्व किसी रूप में मिलते हैं?

“मिश्र के पिरामिड युग के समाज में तीन वर्ग थे—जमींदार, कृषिदास और गुलाम। अंतिम दो भूमिहीन थे। अठारहवीं राजवंश के दौरान चार वर्गों का आभास होता है—सैनिक, पुरोहित, शिल्पकार तथा कृषिदास।¹ ईसा पूर्व 700 की ईरानी सभ्यता में तीन वर्गों की चर्चा अक्सर पाई जाती है पुरोहित, योद्धा और कृषक। केवल एक स्थान पर चौथे वर्ग के रूप में शिल्पकार का नाम मिलता है। ससानियन काल (226-651 ई.) में चार वर्गों का उल्लेख बार-बार पाया जाता है। पुरोहितों को मनुष्य के सिर, योद्धाओं को भुजाओं, कृषकों को उसके उदर तथा शिल्पकारों को उसके पैरों से तुलना किया गया है। पुरोहितों का पेशा आदिकाल से वंशानुगत था। ईरानी इतिहास के परवर्ती काल के दौरान विभिन्न वर्गों के बीच अंतरवर्गीय विवाह में बाधा आ गई थी। पुरोहित वर्ग किसी भी वर्ग में विवाह करके पत्नी बनाने का अपना हक मानता था लेकिन अन्य वर्गों को अपनी बेटी देने

से मना कर देता था। किसी जरतुश्ती (zoroastrian) का गैर जरतुश्ती के बीच विवाह की कठोर निंदा की जाती थी।² चीन में समाज प्राचीन काल से चारवर्गों में विभाजित माना जाता है : (1) सज्जन (2) कृषक (3) शिल्पकार तथा (4) व्यापारी। सज्जन वर्ग में शासकों एवं नागरिक सेवा के सदस्यों तथा साहित्य में रुचि रखने वाले लोग हुआ करते थे। बैंकर, वकील, वैद्य, पुरोहित, व्यापारी, उत्पादक, इंजीनियर आदि में से कोई भी सज्जन वर्ग में नहीं थे। कृषक एवं खेतिहर लोगों को आदिकाल से सम्मानित माना जाता था। व्यापारियों का सामाजिक स्तर अस्पष्ट था। हज्जाम और उनके पुत्रों को हीन (Pariah) माना जाता था तथा उनके लिए नागरिक सेवा वर्जित थी। कन्फ्यूसियस के अनुसार समाज पांच वर्गों में विभाजित था तथा सामाजिक मर्यादा का अवरोही क्रम (descending order) था—विद्वान, कृषक, शिल्पकार, व्यापारी और सेवक। योद्धाओं को सामान्यतः अंतिम वर्ग में रखा जाता था।

विविध प्रकार के शिरोवस्त्रों (टोपी, पगड़ी आदि), पोशाकों एवं बिल्लों से सामाजिक स्तर का बोध होता था। जिनके माता-पिता हीन व्यवसायों में नियोजित थे, यथा—नौकरी-चाकरी, बाजीगरी अथवा बच्चों की देखभाल करना आदि, उनमें से किसी को भी प्रतिस्पर्द्धात्मक नागरिक सेवा में भाग लेने की अनुमति नहीं थी। एक राजा ने व्यापारियों को सिल्क-वस्त्र पहनने और सवारी का प्रयोग करने से प्रतिबंध लगा दिया था। नागरिक सेवा को छोड़कर सभी अन्य पेशाओं में वंशानुगत का रिवाज था। चीन की एक पुस्तक में लिखा है, अधिकारियों के पुत्रों को सदा अधिकारी बनना चाहिए, शिल्पियों के पुत्रों को सदैव शिल्पी होना चाहिए, व्यापारियों के पुत्रों को सदैव

1. कास्ट एंड रेस इन इंडिया, जी.एस.धुरें, पृ. 1411

2. वही, पृ. 1441

व्यापारी होना चाहिए तथा कृषकों के पुत्रों को सदैव कृषक होना चाहिए।”¹

“अंतवर्गीय विवाह अधिकारियों और अभिनेत्रियों या गायिकाओं के बीच वर्जित था। कुलीन वंश के लोग यदि इनसे विवाह करते थे तो उन्हें निम्नकोटि का दर्जा मिलता था। नटबाजों एवं नर्तकों, पुलिस वालों, और नाविकों को अपने ही वर्गों की औरतों से विवाह करना अनिवार्य था। कर्मचारियों एवं विद्वानों के लिए व्यापारियों के परिवारों के साथ विवाह अवांछित था।

बारहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक जापान का समाज पांच भिन्न-भिन्न समूहों में विभक्त था। पुश्तैनी समुदाय सैनिकों का दर्जा सबसे ऊपर था फिर सामाजिक प्रतिष्ठाक्रम कृषकों, शिल्पकारों और व्यापारियों का आता था। पांचवां वर्ग-ईता (Eta) और हीनीन (Hinjin) के दो समूहों को मिलाकर बनता था, जो समाज के नीचे (Pariah) एवं जातिच्युत (outcaste) थे। प्रत्येक धंधा जिसमें मनुष्य गंदगी का संपर्क करता था जैसे मनुष्य के शवों, पशुओं के कंकालों या लाशों तथा सभी प्रकार की सड़ी-गली वस्तुओं, उन्हें सामाजिक दर्जा में नीचे गिना जाता था। भड़ैती के धंधों (earnings of a pimp) के साथ-साथ जिनकी मजदूरी निश्चित नहीं होती थी वे नीचे समझे जाते थे। अमर्यादित कार्य तथा पत्थर काटने एवं धातु ढलाई के कार्य करने वालों को निर्वासित कर जातिच्युत किया जाता था। 1867-78 ई. की क्रांति के पश्चात सामाजिक वर्गीकरण में बदलाव लाया गया तथा वर्तमान समय में वैधानिक रूप से तीन वर्ग हैं। ये हैं (1) अमीर वर्ग (nobility) (2) कुलीन वर्ग (gentry) तथा जन साधारण (common people) जिसमें कृषकों, शिल्पियों तथा व्यापारियों को सम्मिलित किया गया है। प्रथम के दो वर्गों की जनसंख्या मात्र पांच प्रतिशत है और शेष आम लोग हैं। प्रत्येक गृहस्थ को अपने घर के दरवाजा पर एक पट्टिका टांगना जरूरी है जिस पर उसका नाम एवं वर्ग उत्कीर्ण हो।”² “ईता नगर और गांव के बाहरी

छोर पर रहने के लिए विवश थे तथा अपने प्रधान के द्वारा शासित होते थे। इन अभागों के प्रति अन्याय चरम पर था जो लम्बी अवधि तक टिका रहा एवं उनकी अयोग्यताएं वैधानिक रूप से 1871 ई. में दूर हो सकीं। जातिच्युत लोगों के लिए उच्चतर वर्गों से विवाह वर्जित था।”³

संसार के और भी अनेक देश हैं जहां सामाजिक विभाजन था और अनेक देश हैं जहां अब भी भेदभाव मूलक वर्गीकरण विद्यमान है। “दक्षिणी अरब में आज भी अस्पृश्य जातियों (Pariahs) के दो वर्ग विद्यमान हैं। एक हैं, प्रभावशाली वर्ग के मातहत रहनेवाले शिल्पकार लोग। इन लोगों को शहर के बाहर बसना पड़ता था, यद्यपि उन्हें मस्जिदों में प्रवेश दिया जाता था परन्तु किसी अरबी के घर में जाना वर्जित था। दूसरे वर्ग के जो अस्पृश्य समूह हैं, उन्हें मस्जिदों में घुसने तक नहीं दिया जाता था यद्यपि वे लोग धर्मपरायण मुस्लिम थे।”⁴ धुरें लिखते हैं कि सारांशतः अनेकों आदिम कालीन समाजों एवं प्राचीन काल की लगभग सभी प्रमुख सभ्यताओं के द्वारा जन्म के आधार पर विभेदीकरण को सामान्यतः मान्यता दी गई थी।”⁵

भारतीय समाज में विभेदीकरण का प्रमाण आर्यों के प्राचीनतम संस्कृत ग्रंथ ऋग्वेद में तलाशना अनिवार्य है। ऋग्वैदिक समाज की भौगोलिक पृष्ठभूमि अफगानिस्तान की कुछ नदियों—कुभा (काबुल), सुवास्तु (स्वात), क्रमु (कुर्रम) और गोमती (गोमल) के प्रति संकेत से स्थापित होती है। सिन्धु तथा उनकी पांच सहायक नदियों—वितस्ता (झेलम), असिक्नी (चेनाब), परुष्णी (रावी), विपासा (व्यास) और शुतुद्रि (सतलज) के अतिरिक्त दृष्टती (चौताग) और सरस्वती का उल्लेख ऋग्वेद में हुआ है। इन भौगोलिक संदर्भों से जान पड़ता है कि इन सभी नदियों के किनारों पर प्रारंभिक वैदिक समाज का निवास था। दो-तीन बार गंगा और यमुना का उल्लेख ऋग्वेद में हुआ है

1. वही, पृ. 145-46।

2. वही, पृ. 146।

3. वही, पृ. 147।

4. वही, पृ. 150।

5. वही, पृ. 159।

जिससे प्रमाणित होता है कि उनका दल गंगा-यमुना के बीच के भूखंड की ओर बढ़ चुका था। परन्तु उस क्षेत्र का ज्ञान अधिक नहीं था। समुद्र का ज्ञान संभवतः उनको नहीं था।

ऋग्वेद के अनुसार “अनु, द्रुहयु, यदु, तुर्वसु और पुरु—पांच मुख्य कबीलों के अतिरिक्त भरतों, तृत्सुओं, संजयों, किवियों, और अन्य गौण कबीले भी थे। वे कबीलों को ‘जन’ कहते थे। ये जन परस्पर बहुत लड़ते रहते थे।”¹ पारस्परिक युद्धों में सर्वप्रमुख युद्ध है दस राजाओं का युद्ध। पारस्परिक युद्धों के अतिरिक्त वहां के आदि निवासियों के साथ भी उन्हें युद्ध करने पड़े थे। ‘अज’ ‘यक्षु’, किकट, पिशाच और ‘शिशु’ नामों से ध्वनित होता है कि वे आदिनिवासी थे तथा उनका प्रसिद्ध नेता भेद था जिसे दस राजाओं के नेता सुदास ने पराजित किया था। ऋग्वेद के वर्णनों से प्रकट होता है कि पश्चिमोत्तर के कबीलों और पूरब (गंगा-यमुना घाटी) के आदि निवासियों में शारीरिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक भेद थे। आदि निवासी काले थे और उनकी नाक चपटी होती थी। उनकी भाषा भिन्न थी। जबकि आक्रमणकारी दल गौरवर्ण का था।

दोनों पक्षों के बीच अनेक विषमताएं थीं। ऋग्वेद की ऋचाओं में आदि निवासियों के लिए विभेदकारी शब्दों के प्रयोग किये गये हैं : ‘अनासः’ (चिपटी नाकवाले), ‘अदेवयुः’ (देवताहीन), ‘देवपीयु’ (देवताओं को अपवित्र करने वाले), ‘अयज्वन’ (यज्ञ न करने वाले), ‘अकर्मन’ (कर्महीन), ‘शिश्न देवा’ (लिंग पूजक), ‘अन्यव्रत’ (अन्य प्रकार के व्रत-पूजा करने वाले), ‘मृधवाक’ (अबुझ बोली बोलने वाले) आदि।²

“वेदों में आर्य और दस्यु जाति की चर्चा बहुत आयी है। वे दोनों भिन्न-भिन्न प्रतीत होती हैं। अनेक स्थलों में प्रार्थना आती है कि दस्यु वा दास को विनष्ट करो। इनका धन छीन कर हम आर्यों को दो। वे दस्यु बड़े धनाढ्य हैं। उन्हें मारो इत्यादि। यथा—

वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेनं एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र
(ऋ. 1/33/4)

हे इन्द्र! अकेले ही आप वज्र से धनी दस्यु का हनन करो।

इन्द्रं जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियं मायया
शाशदानाम्। (ऋ. 7/104/24)

इन्द्र! पुरुष वा स्त्री दोनों प्रकार के मायावियों का संघात करो।³ “ऋग 3/53/14 में कहते हैं; ‘हे इन्द्र! मघवन्! कीकट, अर्थात् अनार्य देशों में तेरी गाएं क्या करती हैं, न आपके लिए दूध देती हैं, न यज्ञोपयोगी होती हैं। उस देश के राजा प्रमगन्द के नीच शाखा-सम्बन्धी पुत्र-पौत्रादियों के धन भी हमारे लिए ले-लीजिये।

किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुहे न तपन्ति धर्मम्।
आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैचाशखं मघवन्नन्धया नः॥

इससे सिद्ध होता है कि दस्यु और आर्य दो जातियां बड़ी प्रबल और परस्पर युद्ध करने वाली थीं।⁴

जानने की स्वाभाविक उत्सुकता है कि राजा प्रमगन्द का ‘कीकट’ देश भारत के आधुनिक नक्शा पर कहां अवस्थित रहा होगा? डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी के अनुसार, ‘पश्चिमोत्तर के अलिनों, पक्थों (आधुनिक पखून, पठान), शिवों, भलानसों, और विषाणिनों के आक्रमण के बाद सुदास को पूर्व में भी शत्रुओं से लोहा लेना पड़ा था। शत्रु भेद की अध्यक्षता में उसकी व्यस्त का लाभ उठाकर उस पर चढ़ आये, परन्तु यमुना के समीप उसने उनको धूल चटा दी। भेद सम्भवतः अनार्य था। उसके नेतृत्व में लड़ने वाले ‘अज’, ‘शिग्रु’, और ‘यक्षु’ नामों से भी यही भाव ध्वनित होता है। इस प्रकार अन्तर्जनीय युद्धों के अतिरिक्त आर्यों को संगठित अनार्य शक्ति से भी एक लम्बे काल तक संघर्ष करना पड़ा। इन अनार्य ‘दस्युओं’ अथवा ‘दासों’ ने दीर्घ काल तक आर्यों को चैन न लेने दिया। ‘अनासः’, ‘अदेवयु’, ‘अयज्वन्’, ‘अकर्मन्’ आदि विशेषणों से अनुमान किया

1. प्राचीन भारत का इतिहास, डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी, पृ. 23।

2. वही, पृ. 24।

3. जाति-निर्णय; पं. शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ, पृ. 17।

4. प्राचीन भारत का इतिहास, पृ. 23-24।

जाता है कि 'दस्यु' द्रविड़ थे जो भारत के उसी भूखण्ड में बसते थे जिस पर आर्य अधिकार करना चाहते थे। 'दस्यु' चप्पे-चप्पे भूमि के लिए लड़े, इंच-इंच पर उन्होंने अपना और अपने शत्रुओं का रक्त बहाया, स्वदेश और अपने ढोरों की रक्षा के लिए उन्होंने अनुपम बलिदान किए। परन्तु शत्रुओं की अपूर्व शक्ति ने जब उनके 'पुर' और 'दुर्ग' तोड़ डाले, उनकी भूमि को लहलुहान कर दिया तभी उन्होंने आत्मसमर्पण किया। उनके रक्त से अभिसिंचित धरा पर आर्यों ने परिणामतः अपने गांवों के बल्ले गाड़े, उनको अपना 'दास' बनाया जिनसे उनके वर्ण विधान के निचले स्तर 'शूद्रों' का वर्ग बना। उनकी नारियों को दासियां बनाकर अपने पुरोहित को अमित दान किया। इन दासियों से कक्षीवान, कवष आदि ऋषि जन्में। इन अनार्यों में से कुछ ने वनों और पर्वतों का आश्रय लिया जहां आज भी उनके वंशज जीवित हैं।¹

“दस्यु और आर्य दो प्रबल जातियां थीं जिनके बीच जबरदस्त युद्ध हुए थे।” इस सिद्धान्त को स्वीकार करने में विद्वानों में मतभेद हैं। इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न विचारधारा के दो समर्थ विद्वानों के मतों का उल्लेख करना उचित होगा। डॉ. बी.आर. आंबेडकर के द्वारा 1946 ई. की रचना है 'Who were the shudras?' जिसका हिन्दी अनुवाद 'शूद्रों की खोज' है। डॉ. आंबेडकर का यह ग्रंथ शोध-पूर्ण है और उनकी विचारधारा 'आंबेडकरवादी' की संज्ञा से विभूषित है। दूसरे आर्यसमाजी विद्वान पं. शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ हैं जिन्होंने 'जाति-निर्णय' नामक पुस्तक 1907 ई. में लिखा है। शर्मा संस्कृत के विद्वान हैं और आंबेडकर ने संस्कृत के ग्रंथों का अध्ययन अंग्रेजी-अनुवाद से किया है। दोनों ग्रंथों में वेदों एवं ब्राह्मण साहित्यों के उद्धरणों के द्वारा विवेचना करके निष्कर्ष रखा गया है।

डॉ. बी.आर. आंबेडकर :

1. “आर्य प्रजाति का संबंध रक्त से नहीं है; वैज्ञानिक भाषा में आर्य शब्द का प्रयोग प्रजाति के

संबंध में हो ही नहीं सकता। इसका अर्थ भाषा होता है, भाषा के अतिरिक्त और कुछ नहीं; और यदि हम आर्य प्रजाति की बात करते भी हैं, तो हमें यह ज्ञात होना चाहिए कि इसका अर्थ कुछ नहीं बस... आर्य भाषा है।”² “आर्य शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में इकतीस स्थानों पर हुआ है। किन्तु इनमें से किसी में भी इस शब्द का प्रयोग प्रजाति के अर्थ में नहीं हुआ है।”³

2. “ऋग्वेद के इन कथनों के आलोक में, इस सिद्धान्त के लिए स्पष्ट ही कोई जगह नहीं है कि आर्य प्रजाति ने दासों और दस्युओं की अनार्य प्रजातियों पर सैनिक विजय हासिल की होगी।”⁴

3. “जिन लोगों का यह मानना है कि दास और दस्यु शब्दों का प्रयोग प्रजाति के अर्थ में होता है, वे इन परिस्थितियों को आधार बनाते हैं— (i) “ऋग्वेद में 'मृधवाक' और 'अनास' शब्दों का प्रयोग दस्युओं के विशेषणों के रूप में हुआ है। (ii) ऋग्वेद में दासों को कृष्ण वर्ण का बताया गया है।

मृधवाक का अर्थ होता है असभ्य, अपरिष्कृत भाषा बोलने वाला, इसे प्रजाति के अंतर का आधार मानना लड़कपन होगा।

अनास शब्द की दो व्याख्याएं हैं। प्रो. मैक्समूलर के अनुसार इसका अर्थ होता है 'बिना नाक वाला' अथवा 'चपटी नाक वाला।” सायणाचार्य इसका अर्थ 'मुखविहीन' अर्थात् उत्तम वाणी से रहित बताते हैं। सायणाचार्य इसे अन-असा पढ़ते हैं जबकि मैक्समूलर इसे अ-नासा पढ़ते हैं। यह मानने का कोई कारण नहीं है कि सायण का पाठ गलत है।⁵ दूसरी ओर यह हर प्रकार से सही प्रतीत होता है। इसे मृधवाक के पर्यायवाची शब्द के रूप में पढ़ना ही उचित है। इसलिए इस निष्कर्ष के समर्थन में कोई साक्ष्य नहीं है कि दस्यु किसी भिन्न जाति के थे।

2. शूद्रों की खोज, पृ. 78।

3. वही, पृ. 79।

4. वही, पृ. 86।

5. वही पृ. 86।

1. प्राचीन भारत का इतिहास, पृ. 23-24।

यह सच है कि ऋग्वेद 6/47/21 में दासों को कृष्ण योनि बताया गया है। इस सम्बन्ध में, ऋग्वेद के निम्नलिखित स्रोतों की ओर ध्यान आकर्षित किया जा सकता है—

(क) 6/22/10—“हे ब्रजि, तुमने अपनी शक्ति से दासों को आर्य बनाया, बुरे मनुष्यों को अच्छा बनाया है। हमें वैसी ही शक्ति दो जिससे हम उसके द्वारा अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकें।”

(ख) 10/49/3 (इन्द्र कहते हैं)—“मैंने दस्युओं को आर्यों की उपाधि से वंचित कर दिया है।”

(ग) 1/151/8—“हे इन्द्र! यह पता करो कि कौन आर्य है और कौन दस्यु और उन्हें पृथक करो।”

इससे पता चलता है कि आर्यों और दास-दस्युओं के बीच जो विभेद था वह रंग अथवा मुखाकृति पर आधारित प्रजातीय विभेद नहीं था। तभी तो एक दास अथवा दस्यु एक आर्य बन सकता था। कहना न होगा कि पाश्चात्य लेखकों ने जो सिद्धान्त दिया है वह हर तरह से धराशायी हो गया है। यह अपने आप में आश्चर्यजनक है क्योंकि पाश्चात्य विद्वता को आमतौर पर गहन अनुसंधान और सतर्क विश्लेषण से जोड़कर देखा जाता है।¹

डॉ. आंबेडकर कहते हैं, “आर्य प्रजाति का सिद्धान्त मात्र एक मान्यता है और इससे अधिक कुछ भी नहीं है। यह उस भाषा विज्ञानी प्रस्तावना पर आधारित है जिसे डॉ. बॉप ने 1835 में प्रकाशित अपनी युगांतकारी पुस्तक ‘कम्प्रेटिव ग्रामर’ (तुलनात्मक व्याकरण) में प्रस्तुत किया था। इस पुस्तक में डॉ. बॉप ने यह दिखाया था कि यूरोप की बहुत सारी भाषाओं और एशिया की कुछ भाषाओं का स्रोत एक साझा पुश्तैनी भाषा ही है। डॉ. बॉप की प्रस्तावना जिन यूरोपीय भाषाओं और एशियाई भाषाओं पर लागू होती है उन्हें भारतीय-जर्मन कहा जाता है। सामूहिक रूप में

ये आर्य भाषाएं कहलाई, और इसका प्रमुख कारण यह है कि वैदिक भाषा का संबंध आर्यों से है और यह भी भारतीय-जर्मन भाषा परिवार की है। यह धारणा वह मुख्य आधार है जिस पर आर्य प्रजाति का सिद्धान्त टिका है।”²

“आर्य प्रजाति वाला सिद्धान्त इतना अनर्गल है कि इसे तो बहुत पहले मृत (प्रचलन से बाहर) हो जाना चाहिए था।...हिंदू होने के नाते, आम तौर पर उन्हें तो आर्य सिद्धान्त को नापसन्द कर देना चाहिए था जो एशियाई प्रजातियों पर यूरोपीय प्रजातियों की श्रेष्ठता का दम भरता है। किन्तु ब्राह्मण विद्वान में ऐसी अरुचि तो है ही नहीं, बल्कि वह तो बड़ी तत्परता से इसका जय-जयकार करता है। इसके कारण भी स्पष्ट है। ब्राह्मण द्विराष्ट्र सिद्धान्त में विश्वास करता है। वह आर्य प्रजाति का प्रतिनिधि होने का दावा करता है और वह शेष हिन्दुओं को अनार्यों की संतान मानता है। इस सिद्धान्त से उसे यूरोपीय प्रजातियों के साथ अपनी नातेदारी प्रमाणित करने और उनकी तरह अपना दंभ और अपनी श्रेष्ठता जताने में मदद मिलती है। उसे इस सिद्धान्त का वह हिस्सा विशेष अच्छा लगता है जिसमें आर्य प्रजाति को अनार्य आदिम प्रजातियों का विजेता और आक्रमणकारी बताया जाता है। क्योंकि इससे उसे गैर-ब्राह्मणों पर अपना आधिपत्य बनाये रखने, और उसे उचित ठहराने में भी मदद मिलती है। ‘वर्ण’ शब्द का अर्थ रंग होता है, और अधिकांश ब्राह्मण विद्वान इस मत को स्वीकार करते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि जब तक ‘वर्ण’ की वह व्याख्या स्वीकार की जाती रहेगी तब तक आर्य सिद्धान्त जीवित (प्रचलन में) रहेगा।”³

पं. शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ

“वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेन एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र।

धनोरधि विषुणक्ते व्यायन्नयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः॥

(ऋ. 1/33/4)

1. वही, पृ. 87।

2. वही, पृ. 88।

3. वही, पृ. 90।

हे शूरवीर नरेन्द्र ! विविध शक्तियों से संयुक्त आप एकाकी विचरण करते हुए वज्र के समान अस्त्र से निश्चय ही धनिक दस्यु-चोर डाकू आदि दुष्ट प्राणी का वध कीजिए और अधर्म से औरों के पदार्थ छीननेवाले मनुष्य आपके धनुष पर आते हुए सब प्रकार से मरण को प्राप्त हों। वे कैसे सनक हैं अयज्वनाः—यज्ञादि शुभ कर्म विरहित।

यहां देखते हैं कि 'अयज्वा' विशेषण आया है। जो यज्ञ करने वाले नहीं हैं। यज्ञ नाम समस्त शुभ कर्म का है। जो शुभ कर्म नहीं करेगा, वह अवश्य चोर, डाकू, नास्तिक, व्यभिचारी, कितव, धूर्त होगा। ऐसे पुरुषों का शासन करना राजा का परम धर्म है। सायण—'दस्यु' शब्द का 'चोर' अर्थ करते हैं, इससे दस्यु कोई भिन्न जाति सिद्ध नहीं होती।

परा चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्रायज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः ।
प्र यद्यिवो हरिवः स्थातरुग्र निरव्रताँ अधमो रोदस्योः ॥
(ऋ. 1/33/5)

जो दस्यु-दुष्टजन स्वयं अयज्वानः वैदिक यज्ञों के विरोधी हैं अथवा शुभ कर्म रहित हैं, परन्तु शुभ करने वाले से द्वेष रखने वाले हैं, हे राजेन्द्र! नराधिपते आपकी रक्षा के प्रताप से वे दस्यु अयज्वा पुरुष अपने शिरों को पराङ्मुख (मुंह मोड़कर) करके ही भाग जाते हैं। हे युद्ध स्थल में सदा प्रस्थान करने वाले, हे प्रचण्ड राजेन्द्र! आपने जो द्युलोक (बहुत दूर) से और पृथ्वी और अन्तरिक्ष से, अर्थात् सर्वत्र से अत्रतान-शुभ कर्म रहित विघ्नकारी पुरुषों को निकाल बाहर किया है, इस हेतु आप प्रशंसनीय हैं।

यहां 'दस्यु' के विशेषण में 'अयज्वा' और 'अव्रत' दो शब्द आये हैं और कहा गया है कि ये दस्यु यज्ञ करनेवाले के साथ स्पर्धा, अर्थात् ईर्ष्या करते हैं। इससे सिद्ध है कि एक तो यज्वा, व्रती, आस्तिक हैं और दूसरा अयज्वा, अव्रती और नास्तिक हैं।¹

(ऋ. 1/33/7) का अर्थ—राजेन्द्र आप रोते हुए, और खाते हुए वा हंसते हुए इन दुष्टों को लोक के पार,

युद्ध करके भगा दें और दस्युम्-चौराधिपति दस्यु को द्युलोक से लाकर बड़े उत्कर्ष के साथ दग्ध कीजिए, इस प्रकार उपद्रवों को शान्तकर यज्ञ करने और ईश्वर का गुण गानेवाले मनुष्यों की स्तुति की रक्षा कीजिए।¹

पं. काव्यतीर्थ ने इसी संदर्भ में अनेकों ऋचाएं उद्धृत किया है, जिनमें दस्युओं को अयज्वा, अव्रती, अप+अधम आदि बतलाया गया है तथा उनमें इन्द्र से प्रार्थना की गई है कि उनका विनाश करें। इनसे सिद्ध होता है कि आर्य और दस्यु अथवा दास दो वर्णों के नाम नहीं हैं किन्तु शिष्ट और दुष्ट का नाम क्रम से आर्य और दास हैं। उन्होंने ऐतरेय ब्राह्मण (33/6) उद्धृत करके अर्थ किया है।

“तद् ये ज्यायांसो न ते कुशलं मेनिरे। ताननु व्याजहारान्तान्
वः प्रजाः भक्षीष्टेति। त एतेऽन्ध्राः पुण्ड्राः शबराः पुलिन्दा
मूतिबा इत्युदन्त्या बहवो वैश्वामित्रा दस्यूनां भूयिष्ठाः ॥

विश्वामित्र के अनेक पुत्र थे। किसी कारणवश उन्होंने शूनःशेष को भी अपना दत्तकपुत्र बनाया था। उसको दत्तकपुत्र बनाकर विश्वामित्र ने सब पुत्रों से कहा है कि—हे पुत्रो! इसी को आप सब भाई ज्येष्ठ मानो, परन्तु विश्वामित्र के ज्येष्ठ पुत्र ने इसको कुशल नहीं माना। इस प्रकार आज्ञा भंग करते हुए उन पुत्रों से विश्वामित्र ने कहा कि तुम्हारे सन्तान नीच जाति को प्राप्त हों। वे ये अन्ध, पुण्ड्र, शबर, पुलिन्द, मूतिबा आदि नीच जाति के मनुष्य हुए। विश्वामित्र की सन्तान इस प्रकार दस्युओं में अधिक हैं।

इससे वैदिक सिद्धान्त ही सिद्ध होता है, अर्थात् जो अनाचारी हुए वे आर्यों से निकलकर विरुद्ध पक्ष ले अनार्य, अन्ध, प्रभृति नाम से प्रसिद्ध होने लगे और इसी हेतु यह भी संभव है कि इनके पास धन-धान्य बहुत हो, क्योंकि वे आर्य से 'दस्यु' बने हैं।²

—क्रमशः

1. जाति निर्णय, पं. शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ, पृ. 27-2 ।
2. वही, पृ. 49-50 ।

कबीर संत थे

(परम पूज्यवर गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा दिनांक 22-06-2005 कबीर संस्थान, इलाहाबाद में कबीर जयंती के अवसर पर दिया गया प्रवचन।—प्रस्तुति श्री रामकेश्वर जी)

पूजनीय संतसमाज, मंचासीन महानुभावो, सज्जनो और देवियो! सद्गुरु कबीर एक संत थे, आध्यात्मिक संत, लेकिन वे ऐसे संत थे जो चुप नहीं रह सकते थे। वे इतने तेज थे कि जहां गलत देखते थे, टोक देते थे। वे जो बात करते थे सीधी करते थे। उसमें कोई लाग-लपेट नहीं रहती थी। उनकी निर्भयता को हम उनकी वाणियों से समझ सकते हैं। वे तो अब नहीं हैं कि हम उनकी बातों को सुन पायें लेकिन उनकी वाणियों को हम देखें तो उनकी वाणी निर्भय वाणी है। उनके बारे में ही कहा गया है—“पच्छपात नहिं बचन सबहिं के हित की भाखी”—इसमें कहा है कि सद्गुरु कबीर का कोई भी वचन पक्षपातपूर्ण नहीं है। पूरा पद इस प्रकार है—

कबीर कानि राखी नहीं, वर्णाश्रम षट्दरसनी।
भक्ति विमुख जो धर्म ताहि अधरम करि गायो।
योग यग्य व्रत दान भजन बिनु तुच्छ दिखायो।
हिन्दू तुरुक प्रमान रमैनी शब्दी साखी।
पच्छपात नहिं बचन सबहिं के हित की भाखी।
आरूढ़ दशा ह्वै जगत पर मुख देखी नाहिन भनी।
कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षट्दरसनी।

यह छः पंक्तियों का पद है जो नाभादास जी महाराज का है, जो एक परम वैराग्यवान वैष्णव संत थे। ये छहों पंक्तियां इतनी सारगर्भित हैं कि इनके बाहर कोई आलोचक कबीर के बारे में और क्या कहेगा! ऐसा लगता है कि मानो इन्हीं छहों पंक्तियों की व्याख्या देश-विदेश के समस्त विद्वान कर रहे हैं।

नाभादास जी महाराज सद्गुरु कबीर के बारे में कहते हैं कि मुखदेखी बात कबीर साहेब ने नहीं कही। हिन्दू और तुरुक दोनों के लिए प्रमाण की बात उन्होंने कही। उनके वचन पक्षपात के वचन नहीं थे किन्तु सभी के हित की बात उन्होंने कही। वर्णाश्रम,

षट्दरशनी की मर्यादा उन्होंने नहीं रखी। सत्य के आड़े जो भी आया उन सबको उन्होंने काटा।

मुख्य बात कबीर में है मनुष्य के लिए पक्षधरता। अन्य संतों और भक्तों की वाणियों को देखें तो वे सभी ईश्वर से बात करते हैं। कोई श्रीराम से बात करते हैं, कोई श्रीकृष्ण से करते हैं, कोई निराकार से बात करते हैं तो कोई अन्य देवताओं से बात करते हैं लेकिन कबीर मनुष्य से बात करते हैं। “भाई”, “पंडित”, “साधो”, “योगी”, “मुल्ला” ऐसा कहकर वे मनुष्यों को सम्बोधित करते हैं और मनुष्यों से बात करते हैं। सद्गुरु कबीर मनुष्यों के बीच में जो दरार है उसको पसंद नहीं करते हैं। वे कहते हैं कि मनुष्य केवल मनुष्य है और यही उनका खास उपदेश है।

पूरी दुनिया में बुद्धिजीवी होते हैं, शस्त्रजीवी होते हैं, व्यवसायजीवी होते हैं, शिल्पजीवी होते हैं और श्रमजीवी होते हैं। यह वर्ग कोई बनाता नहीं है किन्तु यह स्वाभाविक है। बुद्धिजीवी वे हैं जो ज्ञानप्रधान होते हैं। शस्त्रजीवी वे हैं जो शासन करते हैं और हथियार रखते हैं। उनको आप क्षत्रिय भी कह सकते हैं। व्यवसायजीवी वे होते हैं जो वस्तुओं का आदान-प्रदान, उत्पादन-वितरण करके जीते हैं, शिल्पजीवी कला और कारीगरी करके जीते हैं और श्रमजीवी मजदूरी करके जीते हैं। पूरी दुनिया में इन वर्गों के लोग सदा से होते चले आये हैं और सदा होते रहेंगे।

अपने यहां की जो वर्णव्यवस्था हमें दिखाई देती है, वह बहुत दूषित है। हमारे यहां वर्णव्यवस्था अर्थात काम का बंटवारा कभी रहा। योग्यता के अनुसार उसमें लोगों को नियुक्त किया गया और फिर जन्म के अनुसार वर्णव्यवस्था को बना दिया गया। तभी से बिगड़ गया। कहा यह गया कि यह सब प्रभु की देन

है। ऐसा प्रभु ने कहा है। प्रभु की वाणी जगह-जगह शास्त्रों में लिखी गयी। आसमान में एक प्रभु मान लिया गया जो केवल कल्पनामात्र है। सबसे बड़ा प्रभु है—मनुष्य। मनुष्य से बड़ा प्रभु न तो कभी हुआ है, न आज है और न कभी आगे होगा। इसी परम प्रभु मनुष्य ने सारे प्रभुओं की कल्पना की और अपने मन की बात को तथाकथित प्रभु के मुंह में डाल-डालकर निकाला है। सभी सम्प्रदाय के लोगों ने अपना-अपना प्रभु खड़ा किया और उनके मुंह में अपनी बात को डालकर उन्होंने निकाल ली और कहा कि देखो! यह प्रभु ने कहा है।

प्रभु ने ही यह कहा है कि “शूद्र लोग केवल तीनों वर्णों की सेवा करें। इसी से उनका कल्याण है। जप-तप कठिन काम है इसमें पढ़ने की उनको जरूरत नहीं है। फिर उनको पोथी-पुराण पढ़ने की भी क्या आवश्यकता है, उनको शिक्षा-दीक्षा की क्या आवश्यकता है। उनको मंदिर में जाने की क्या आवश्यकता है। वे तीनों वर्णों की सेवा करें बस, उनका कल्याण है।” यह उनके लिए प्रभु की बहुत बड़ी करुणा है। ऐसा प्रभु ने ही कहा है लेकिन यह किसी प्रभु ने नहीं कहा है किंतु यह एक भयंकर चालबाजी है क्योंकि एक बहुत बड़ा वर्ग वेदविहीन तो रहे ही, विद्याविहीन भी रहे जिससे कि अपना स्वार्थ उनसे साधा जाता रहे। ऐसा विधान बना दिया गया कि शूद्र वेद नहीं पढ़ सकते और विद्या भी नहीं पढ़ सकते।

आज के शंकराचार्य लोग तो पढ़े-लिखे होते ही हैं, पहले के भी पढ़े-लिखे होते थे। वे लोग वेदों को पढ़कर देखें कि वेदों के मंत्रों के कितने रचयिता शूद्र कहे जानेवाले व्यक्ति हैं और ऐसी कितनी स्त्रियां भी हैं जिन्होंने वेदमंत्रों की रचना की हैं। जब वे वेदों के रचयिता हैं तो वेदों को वे पढ़ कैसे नहीं सकते हैं। लेकिन इतना भेद वे स्वयं नहीं समझते हैं क्योंकि उनका संस्कार जटिल है। दो-ढाई हजार वर्षों से शास्त्रों में ऐसी रचनाएं की गयी हैं। वह अंश वर्णव्यवस्था का प्रदूषित स्वरूप उपस्थित करता है और अत्यन्त जहरीला है। उनको भय था कि अगर शूद्र पढ़ेगा तो वह

उनकी पोल-पट्टी को जान जायेगा। इसलिए ऐसा विधान बना दिया गया कि उसको पढ़ना नहीं चाहिए। आज लोग पढ़ रहे हैं और जान रहे हैं। इसलिए समझ रहे हैं कि हमारे साथ अन्याय हुआ है। आज से छः सौ वर्ष पूर्व कबीर साहेब ने ललकारा था—

*जो तू ब्राह्मण ब्राह्मणी को जाया, और राह दै काहे न आया।
जो तू तुरुक तुरुकनि को जाया, पेटहि काहे न सुन्नति कराया॥*

और—“को ब्राह्मण को शूद्र”—इस समाज में कौन ब्राह्मण और कौन शूद्र है। जिनको शूद्र कहा जाता है उनका और जिनको ब्राह्मण कहा जाता है उनका रक्त निकालकर यदि डॉक्टर के पास भेज दिया जाये और डॉक्टर से कहा जाये कि आप परीक्षण करके यह बताइये कि इसमें कौन रक्त शूद्र का है और कौन रक्त ब्राह्मण का है तो वह डाक्टर नहीं बता पायेगा। विविध वर्णों के लोगों का रक्त अलग-अलग निकालकर डॉक्टर के पास भेज दिया जाये और वह बता दे कि यह रक्त ब्राह्मण का है, यह रक्त क्षत्रिय का है, यह रक्त वैश्य का और यह रक्त शूद्र का है, यह रक्त मुसलमान का है और यह रक्त हिन्दू का है तब मान लिया जाये कि यह बंटवारा सत्य है लेकिन ऐसा कहां है। साहेब तो कहते हैं—

*एकै त्वचा हाड़ मल मूत्रा, एक रुधिर एक गूदा।
एक बूंद से सृष्टि रची है, को ब्राह्मण को शूद्रा॥
रजोगुण ब्रह्मा तमोगुण शंकर, सतोगुणी हरि होई।
कहहिं कबीर राम रमि रहिये, हिन्दू तुरुक न कोई॥*

वे सब कुछ साफ कर देते हैं और कहते हैं कि सभी मनुष्य हैं और मनुष्य के अलावा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये कुछ भी नहीं हैं। सभी केवल मनुष्य हैं इसलिए तुम मनुष्य बनो।

वेद के ऋषि कहते हैं—“मनुर्भव जनयादैव्यं जनम्”—मनुष्य बनो और दिव्य जनसमाज पैदा करो। चारों वेदों में कहीं भी छुआछूत की एक भी पंक्ति नहीं है। चारों वेदों में यह बारम्बार आता है—“पंचजनाः” अर्थात् पांच जन यज्ञ करते हैं। पंचजन का जो अर्थ विदेशी विद्वानों ने किया वह ठीक नहीं है। इसका जो अर्थ सायणाचार्य ने किया है वही ठीक है। वेदों का

सर्वाधिक सशक्त भाष्य सायणाचार्य का ही है। लेकिन वे भी गलत किये हैं। उनके भी भाष्य में अनेक जगह विचारणीय बातें हैं।

सायणाचार्य ने “पंचजनाः” का अर्थ दिया है— ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद। जिनको मैंने अपनी भाषा में कहा कि विद्वान, शासक, व्यवसायी, शिल्पी और श्रमिक ही पंचजन हैं। ये पंचजन यज्ञ करते हैं। श्रमिक के लिए आया है कि वे यज्ञ करते हैं। वेदों में कहीं यह निषेध नहीं है कि श्रमिक यज्ञ न करे, स्त्री यज्ञ न करे, शूद्र यज्ञ न करे। ऋषियों ने सभी के लिए यज्ञ करने का विधान बनाया था। अब हम लोगों को यह विचार करना चाहिए कि वे लोग आगे थे कि हम लोग। वे ही लोग आगे थे। वेदों को पढ़ने से यह ज्ञात हो जाता है कि वेदों के रचयिता काफी कुछ उदार थे लेकिन पीछे चलकर बहुत गड़बड़ हुआ और उसी गड़बड़ी ने हिन्दू समाज को सड़ा दिया।

कबीर साहेब इसके बिलकुल खिलाफ थे। मनुष्य केवल मनुष्य है—यही उनका मूल उपदेश था। वे यह चाहते थे कि हर मनुष्य को सब दिशाओं में समान अधिकार होना चाहिए। जाति-बिरादरी के आधार पर मनुष्य का कोई अपमान न करे। उनकी यही सूझ स्वतंत्र भारत में कानून के रूप में बदल गयी और यह उनके विचारों की सच्ची विजय है। आज पूरे भारत में कोई भी मनुष्य हो, सभी दिशाओं में बढ़ने के लिए स्वतंत्र है और कोई किसी को अछूत यदि कह दे तो दंडित हो सकता है।

कबीर साहेब चमत्कार के विरोधी हैं। धर्म वाले लोग चमत्कार को अपने छाती-पेटे लगाये रखना चाहते हैं और वही चमत्कार की रचना किये हैं। चमत्कार वह है जिसमें कार्य-कारण की व्यवस्था न हो। कहीं किसी महात्मा ने आशीर्वाद दिया और बच्चा पैदा हो गया, धन बढ़ गया और फैक्टरी लग गयी। अमुक महात्मा आकाशगामी हैं। अमुक महात्मा जी पांच सौ वर्ष के हैं। अमुक महात्मा जी अंतर्यामी हैं। अमुक महात्मा तथाकथित भगवान के अवतार हैं। ऐसी-ऐसी चमत्कार की बातें लोग कहते हैं लेकिन

कबीर साहेब इसका घोर विरोध करते हैं। वे कहते हैं—

काहू के बचनहिं फुरे काहू करामाती,
मान बड़ाई ले रहे हिन्दू तुरुक जाती।
बात ब्यौंते असमान की मुद्धति नियरानी,
बहुत खुदी दिल राखते बूड़े बिनु पानी।
कहैं कबीर कासों कहों सकलो जग अंधा,
साँचे सो भागा फिरे झूठे का बन्दा।

वे कहते हैं कि कोई आकाश में उड़ रहा है तो किसी की वाचा सिद्ध हो रही है। कोई चमत्कार दिखा रहा है, लेकिन यह सब अंधापन है। ऐसा कुछ नहीं होता।

“योग की जब सिद्धि हो जाती है तब आदमी कुछ भी कर सकता है”—यह योगदर्शन में भी लिखा गया है जो बिलकुल गलत है। योग की सिद्धि का अर्थ है मन और इन्द्रियों का स्ववश हो जाना। आकाश में उड़ना, भुनगा बन जाना, हाथी बन जाना योग की सिद्धि नहीं है। यह बिलकुल झूठी बात है। योगदर्शन का भाष्य मैंने जब किया तो विभूतिपाद के समस्त चमत्कारों का खण्डन किया और अच्छे-अच्छे विद्वान भी उसको जब पढ़े तो महसूस किये कि यह सही काम हुआ।

हम डरे और दुबके रहते हैं इसलिए सत्य को कहना नहीं चाहते हैं। हमें शंका होती रहती है फिर भी दुबके रहते हैं। भय करने की कोई जरूरत नहीं है। हर बात का आपरेशन होना चाहिए। अगर वह सच है तो हमारी छूरी टूट जायेगी और नहीं तो वह झूठ बात कट जायेगी।

योग सिद्धि का मतलब होता है—मन-इन्द्रियों का स्ववश हो जाना। इन्द्रिय और मन पर हमारा पूरा अधिकार हो जाये, पूरी आत्मसंतुष्टि हो जाये यही योग का फल है। धर्म वालों ने चमत्कार का बवण्डर बहुत फैलाया है और यह धन-जन बटोरने का चक्कर है और कुछ नहीं है। कबीर साहेब ने इसका खूब पर्दाफास किया है।

जादू-मंत्र, टोना-टम्बर, झाड़-फूंक, भूत-प्रेत सब झूठे हैं। दिशाशूल, शकुन-अपशकुन, ग्रहदशा, लगन-मुहूर्त का प्रपंच, यह सब उलझन कर्मकांडियों ने बनाया है। इन उलझनों में मत पड़ो और स्वतंत्र होकर काम करो। अपने हाथ की रेखा किसी को मत दिखाओ किन्तु हाथ से काम करो। जितनी अंधरूढ़ियां हैं उन सब पर साहेब ने कठोर कुठाराघात किया।

कबीर साहेब के सम्पूर्ण क्रांतिकारी विचारों को जानने के लिए उनका 'बीजक' पढ़ना चाहिए। 'बीजक' कबीरपंथ की पुस्तक नहीं है। वह तो कबीर की पुस्तक है। पूरे 'बीजक' में 'कबीरपंथ' शब्द नहीं है। कबीरपंथ की कोई नियमावली उसमें नहीं दी गयी है। उसमें तो सर्वत्र प्राप्त विचारों की समीक्षा और सत्य का उद्घाटन है। इसलिए कबीर को समझने के लिए उनका 'बीजक' पढ़ना बहुत जरूरी है।

कबीर साहेब ने जहां कहीं भी जो कुछ गलती देखी उसपर खुलकर कहा। उन्होंने डरकर बात नहीं की। उन्होंने मुल्ला को कहा, पंडित को कहा, गुरु को कहा, साधु को कहा। गोविन्द से बड़ा गुरु है ऐसा कहनेवाले संत कबीर साहेब ने गुरु को भी कहा कि—“ये कलि गुरु बड़े परपंची, डारि ठगौरी सब जग मारा।” और—“अंधे अंधा पेलिया दोरु कूप पराय”—गुरु और चले दोनों अंधे हैं। जहां अज्ञान, अंधविश्वास और स्वार्थास्वार्थी की बात है, वहां किसी को उन्होंने छोड़ा नहीं, सबको कहा लेकिन मूलरूप में वे संत हैं।

उनकी असली यात्रा अन्तर्मुखता की ओर है। उनकी वाणियों में कूड़ा-कबाड़ बुहारने की जो बातें हैं, साधना की बातों की अपेक्षा कम ही हैं। साधना की बात, अंतर्मुखता की बात बहुत ज्यादा है लेकिन कूड़ा-कबाड़ को बुहारने की उनकी बातें इतनी चुटीली हैं कि वे ही चारों तरफ छायी हुई हैं। इसलिए सामान्य लोग यह समझते हैं कि उन्होंने खण्डन ही ज्यादा किया है। लेकिन खण्डन की बातें उन्होंने कम कही हैं क्योंकि उन बातों की जरूरत बहुत कम होती है। अंधविश्वास के विषय में थोड़ा कह दिया जाये, लोग समझ लेंगे लेकिन विषय-वासना, लोभ, मोह, काम, क्रोध ये मन की

बहुत गहराई में हैं। इनके लिए बारम्बार कहना पड़ता है। इसलिए आध्यात्मिक बातें उनकी वाणियों में बहुत ज्यादा हैं क्योंकि वे स्वयं संत हैं और संत सत्य की स्थिति में जीने वाला होता है।

सत् शब्द से ही संत शब्द बना लगता है। साहेब संतों में वैसे संत हैं जो अपनी अलग पहचान बना लेते हैं। वे धार्मिक हैं, संत हैं, आत्म अस्तित्व मानते हैं, जड़ से भिन्न आत्मा का अस्तित्व मानते हैं। आत्मा, परमात्मा, कुछ भी कहो चीज एक ही है। वे चेतन अस्तित्व मानते हैं, पुनर्जन्म मानते हैं, कर्मफलभोग मानते हैं। पुरुषार्थ और प्रारब्ध को भी वे मानते हैं। श्रम और भाग्य को भी वे मानते हैं। भाग्य श्रम से बनता है। भाग्य स्वतंत्र नहीं है। हमने रोटी बनायी और खायी और जो शेष बचीं उनको सुबह के लिए रख दिया। वही मानो सुबह के लिए भाग्य हो गया। शाम को बनाया था और अब उसे सुबह के लिए रखा है। वह भाग्य है। तत्काल जो बनाकर खाते हैं वह श्रम है। श्रम से ही भाग्य बनता है। भाग्य के भरोसे रहना गलत है। श्रमशील होना चाहिए। कबीर साहेब ने श्रम को श्रेय दिया। श्रमिकों और कर्मकरों की उन्होंने पक्षधरता की और उन्होंने बारम्बार अपने को जुलाहा कहा। उन्होंने स्वयं कपड़ा बुनने का काम किया। उन्होंने अपने को ब्राह्मण कहीं नहीं कहा किन्तु एक दोहा पता नहीं किसने जड़ दिया है उनके नाम पर और कहा है—

पहले जन्म हम ब्राह्मण होते, ओछे कर्म मतिहीना।

रामदेव की सेवा छूटी, पकरि जुलाहा कीन्हा॥

इसका अर्थ है कि पहले जन्म में हम ब्राह्मण थे लेकिन मेरी बुद्धि नीच थी। इसलिए सेवा नहीं कर सका तो भगवान ने मुझे पकड़कर आज जुलाहा बना दिया। मतलब है कि भले ही आज मैं जुलाहा हूँ लेकिन मैं पहले का ब्राह्मण हूँ। यह एक प्रपंच है और इस प्रपंच को डालने के लिए किसी ने यह दोहा बनाया है।

कहते हैं कि रविदास जी महाराज के पास लोग गये। वे समझे कि ये तो चमार हैं तो उन्होंने अपने चाम को छीलकर दिखाया तो देखा गया कि अन्दर में

वे जनेऊ पहने थे। यह सब हीनभावना का प्रकाशन है। रविदास जी महाराज कभी भी ऐसा नहीं कह सकते थे। कबीर साहेब कभी भी अपने को ब्राह्मण नहीं कहे। वे अपने को हरदम जोलाहा कहे। जुलाहा कहना क्या बुरा है? वेदों को आप देख लीजिए। उनमें एक ही परिवार के लोग नाना व्यवसाय करते हैं। वेद के ऋषि कहते हैं—

कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणी नना।
नानाधियो वसूयवोऽनु गा इव तस्थिमेन्द्रायेन्दो परि स्रव॥

ऋषि कहते हैं कि मैं कारीगर हूँ, लकड़ी छीलता हूँ। मेरा पिता वैद्य है, दवाई कूटता है। मेरी माता भड़भूज है, भूजा भूनती है। माताएं अपने बच्चों के लिए कपड़ा बुनती हैं। “कवयोः युञ्जन्ति सीराः”— कवि लोग हल चलाते हैं। हिन्दी में तो कवि का अर्थ होता है कविता बनानेवाला और मंच पर कविता गानेवाला लेकिन संस्कृत के अनुसार कवि का अर्थ होता है पारदर्शी, अन्तर्द्रष्टा, क्रांतिकारी। संस्कृत के अनुसार क्रांतिकारी का अर्थ है आगे बढ़नेवाला। जो एकदम क्रांत अर्थात् पहुंच गया है, पार हो गया है उसको कवि कहा जाता है।

“क्रांति” और “क्रांत” ये दो शब्द हैं। क्रांति का अर्थ है आगे बढ़ना और क्रांत का अर्थ है आगे को बढ़ा हुआ, पहुंचा हुआ। क्रांतिद्रष्टा अर्थात् आर-पार को देख लेनेवाला, सत्य को समझ लेने वाला महाज्ञानी हल चलाता है। वैदिक ऋषियों में हीनभावना नहीं थी। वैदिक ऋषि गाय चरते हैं। वे सब काम करते हैं। कबीर साहेब ने उसी धारा को समाज के सामने रखा।

उनकी अंतिम बात अध्यात्म है। वे संत हैं और दुखों से मुक्त होने के लिए वे हमलोगों को प्रेरणा देते हैं। आदमी चाहे कुछ भी पा जाये, दुखी ही रहता है। मन की पूरी पवित्रता ही जीवन की सफलता है। धन मिले, पद मिले, प्रतिष्ठा मिले, जो कुछ भी मिले उन सबसे हमें आंतरिक संतोष नहीं मिल सकता।

आदमी बचपन से ही अपने मन में खुराफात जमा करता है। हम अपने मन से जो सोचते हैं, वाणी से जो

बोलते हैं और इन्द्रियों से जो करते हैं उनके संस्कार हमारे मन पर पड़ते हैं। वे संस्कार अगर गलत हैं तो आगे चलकर हमें तकलीफ देते हैं और अच्छे हैं—अच्छा सोचना है, अच्छा बोलना है और अच्छा करना है—तो हमारे जीवन में शांति आती है। अगर संस्कार गलत हैं—गलत सोचना है, गलत बोलना है, और गलत करना है तो हमारे जीवन में अशांति आती है।

हमारे कार्यों का ही परिणाम हमारे मन पर पड़ता है। संस्कारों का समुच्चय ही मन होता है और मन ही जीव के सामने सब समय खड़ा रहता है। सबेरे नींद खुली कि मन आकर हमारे सामने खड़ा हो जाता है। नींद में गये और पूरी नींद नहीं आयी, सपना देखने लगे तो वहां भी मन सपने के रूप में खड़ा हो जाता है। गाढ़ी नींद आ गयी तो मन बैठ जाता है लेकिन मरा नहीं है। जैसे ही नींद खुली कि सामने आकर खड़ा हो जाता है। अगर मन में खुराफात है तो शांति कभी भी नहीं मिलेगी।

किसी के पास सोने का महल हो तो क्या हो जायेगा। सोने का महल ही क्या कर लेगा भला। आप तो जानते ही हैं कि रावण सोने की नगरी में रहता था लेकिन वह सुखी नहीं था क्योंकि एक सुखी आदमी किसी पराई स्त्री को हरने नहीं जायेगा।

जीवन की सर्वोच्च उपलब्धि है मन की पूर्ण निर्मलता और यही संतत्व है। निर्मल मन होना ही संतत्व है। सभी संतों ने इस पर जोर डाला है। कबीर साहेब की वाणी में वैराग्य अधिक क्यों है? जहां कहीं भी मैं जाता हूँ वहां के दूसरे मत के लोग ऐसा पूछते और कहते हैं। एक बार एक गुरुद्वारे में मैं गया। वहां एक ज्ञानी जी ने कहा कि “कबीर साहेब की वाणी में वैराग्य भरा है—कबीर की वाणी वैराग्य से भरी है” क्यों, क्योंकि मन में जो मोह है उसी मोह से सारा पाप होता है और वैराग्य के बिना मोह कट नहीं सकता।

वैराग्य का मतलब साधु का कपड़ा नहीं है जो हम लोगों ने पहन रखा है। हम लोगों के कपड़े वैराग्य के चिन्ह भर हैं, लक्षण नहीं हैं। वैराग्य का लक्षण है

निर्मोहता। संसार की नश्वरता को निरंतर हमें देखना चाहिए। साहेब ने कहा है—

पानी केरा बुदबुदा, अस मानुष की जात।

देखत हि छिप जायेगा, ज्यों तारा परभात॥

मानुष की जात क्या है, पानी का बुदबुदा है। सबेरा हुआ और तारे छिप गये। किसी का कुछ भी रहता नहीं है। मैं कौन हूँ और मेरा क्या है इसपर विचार करना ही मनुष्य का काम है। आध्यात्मिक उन्नति के लिए इसकी बड़ी जरूरत है—“मैं कौन हूँ” और “मेरा क्या है” इन दो तत्त्वों को समझना। मैं देह नहीं हूँ। मैं तो शुद्ध आत्मा हूँ। मैं नित्य वस्तु हूँ। मैं अमर हूँ। आत्मा पूर्णरूप से शुद्ध है, निर्मल है। यह जो सारा विकार है, हमारा लगाया हुआ है। मेरा क्या है—कुछ नहीं। मेरा जो माना जाता है वह केवल व्यवहार है और यह बात कोई गूढ़ नहीं है क्योंकि इसे हम और आप रात-दिन देखते हैं।

बड़े-बड़े लोग उठ-उठकर चले गये हैं। कोई रहा नहीं है। और किसी के साथ कुछ नहीं रहा है। कबीर साहेब कहते हैं—“सदा रहै सुख संयम अपने बसुधा आदि कुमारी।” वे कहते हैं कि वसुधा तो आदि से ही कुमारी है। वसु का मतलब है धन और वसुधा का मतलब है धन को धारण करनेवाली यानी पृथ्वी सदा से ही कुमारी है। यह किसी की होकर नहीं रही है। “सदा रहै सुख संयम अपने”, आत्मसंयम से स्थायी सुख होता है। सुख है मन की शांति। मन में प्रतिक्रिया न हो। सुबह से शाम तक हमारा जीवन प्रतिक्रिया रहित होकर बीते। प्रतिक्रिया रहित रहना ही संतत्व है। इसपर कबीर साहेब का उपदेश बहुत है।

कबीर साहेब मूलरूप में संत थे और उनकी वाणी आध्यात्मिक है। आत्म-उद्धार के लिए है और सारे दुखों से मुक्त होने के लिए है। इसके अलावा और भी जो क्षेत्र हैं और उनमें जो भ्रांतियां हैं उनके लिए उन्होंने खूब कहा है। धार्मिक क्षेत्र में बड़ी-बड़ी भ्रांतियां हैं। लोगों ने लिख रखा है कि भगवान की माया सबको भटका रही है। कबीर कहते हैं कि भगवान की माया नहीं किन्तु आपकी माया आपको भटका रही है। आपने

तम्बाकू खाना शुरू किया तो क्या तम्बाकू भगवान ने आकर आपके मुंह में डाल दिया। आप ही ने खाया। उसमें भगवान का क्या दोष है।

एक लड़की से मिलकर एक लड़का समाज में विसंगति उत्पन्न कर रहा है। दोनों में कसमकस है लेकिन वे दोनों मोहवश उसे छोड़ नहीं रहे हैं। यह मोह किसने उत्पन्न किया। क्या ईश्वर ने यह मोह उत्पन्न किया? नहीं, यह मोह स्वयं का ही उत्पन्न किया हुआ है। अपनी ही माया अपने ऊपर है, दूसरे की माया नहीं है।

कितने लोग यह कहते हैं कि “प्रभु ही जो करता है वह होता है। हम तो कठपुतली हैं।” यह कहना भी गलत है। आप अपने लिए जो करते हैं वही होता है। आपसे कोई करवाता नहीं है। आप अपने कर्मों के कर्ता और विधाता हैं। आपसे कोई भी करवाने वाला नहीं है। हम कठपुतली हैं और ईश्वर सूत्रधार है यह बात कहने और सुनने में बहुत बढ़िया लगती है लेकिन सच है नहीं। आप ही अपने कर्मों के कर्ता और विधाता हैं यही सच है। अगर ईश्वर ही सूत्रधार है तब चोर का क्या दोष है। ईश्वर ने ही उसे चोरी करने के लिए भेजा है। वही उसका सूत्रधार है। सूत्रधार जैसे सूत चलाता है, जैसे वह प्रेरित करता है वैसे ही कठपुतलियां नाचती हैं। इसमें उन कठपुतलियों का क्या दोष है।

आप भी यदि कठपुतली हैं और ईश्वर सूत्रधार है तब आपको अपने किये कर्मों का फल क्यों मिल जाता है। यह तो आपके साथ अन्याय है। इसलिए ऐसी कितनी ही बातें धर्म, अध्यात्म और अनेक क्षेत्रों में कह दी जाती हैं, उनपर विचार नहीं किया जाता है, मनन-चिंतन नहीं किया जाता है। उनपर विचार और मनन-चिंतन किया जाना चाहिए।

लोग कहते हैं कि प्रभु की माया हमको नचा रही है। प्रभु की माया तो “दुरत्यया” है, “अघटितघटना पटीयसी” है। प्रभु ही अब तारे तो काम बन सकता है। यह हमारी घोर दुर्बलता है और ऐसी दुर्बलता रखकर कभी भी हमारा कल्याण नहीं हो सकता है। सत्य बात तो यह है कि आपकी माया आपको नचाती है और

हमारी माया हमें नचाती है। कोई प्रभु ऐसा दोषी न होगा जो माया बनाकर आपके ऊपर छोड़ देगा। कटही कुतिया को कोई पाले रहे और सबको कटवाता रहे तो क्या उसे कोई अच्छा कहेगा और क्या वह अच्छा आदमी होगा? इसी प्रकार क्या प्रभु ने माया बनाकर सबको तकलीफ देने की सोची है? प्रभु ने नहीं किया है किंतु आपने किया है।

आध्यात्मिक क्षेत्र में भी जो भ्रांतियां हैं उनको साहेब काटते हैं। सूत्ररूप में हमें इतना ही समझना चाहिए कि कबीर साहेब शुद्ध मनुष्यता के पक्षधर हैं, अंधविश्वासों के विरोधी हैं, चमत्कारों के विरोधी हैं, गलत रूढ़ियों के विरोधी हैं और शुद्ध अध्यात्म पथ के पथिक हैं।

दुखों का अन्त हर मनुष्य के जीवन का लक्ष्य है लेकिन दुख तबतक नहीं मिट सकता जबतक मन मैला है। मन को पूर्ण निर्मल कर लेना ही जीवन की सफलता है और हम क्यों यह नहीं कर पाते हैं क्योंकि हमारे मन में राग है, आसक्ति और मोह है। इसीलिए साहेब की वाणी में वैराग्य भरा है और यह वैराग्य ऐसा वैराग्य नहीं है जो इंसान को परमुखापेक्षी बनाये। वे स्वयं वैराग्यवान थे, लेकिन परमुखापेक्षी नहीं थे। वे स्वावलम्बी थे। वे हमको स्वावलम्बन का पाठ पढ़ाते हैं।

स्वामी शंकराचार्य कहते हैं कि यह जगत तीनों काल में नहीं है लेकिन पूरे जीवनभर वे इसी जगत की सेवा में बिताये थे। इसलिए यह दोष देना कि संत लोग वैराग्य की बात बताते हैं तो वे अपना कर्तव्य छोड़कर भागने की बात करते हैं, गलत है। संत कर्तव्य को छोड़कर भागने को नहीं कहते हैं। जो सच्चा संत है वह कहां भागता है। वह तो सीमित जिम्मेदारी को छोड़कर निस्सीम जिम्मेदारी के क्षेत्र में आ जाता है।

संत वैराग्य की बात जब बताते हैं तो उसका अर्थ यह मत मान लीजिए कि भगोड़ू होने की बात है। वैराग्य का मतलब है अनासक्ति। गृहस्थ हो चाहे विरक्त, स्त्री हो चाहे पुरुष, सबके मन में अनासक्ति की

जरूरत है। अनासक्ति क्यों होनी चाहिए क्योंकि जिसमें हम आसक्त हैं वह हमारा नहीं है। उसकी आसक्ति से विकार पैदा होगा और उससे मन पीड़ित होगा और जब मन ही पीड़ित हो गया तो फिर सुखी जीवन का मतलब क्या है।

हम बड़े धनी हैं, बड़े पद पर हैं। हम बड़े गुरु महाराज हैं, बड़े स्वामी जी हैं लेकिन मन पीड़ित है तो यह सब होने का क्या मतलब है। गुरुत्व, मनुष्यत्व, संतत्व, ब्रह्मत्व, शिवत्व चाहे जो कुछ कहो यही शीतल मन, प्रपंचशून्य, विकारशून्य एवं उद्वेगहीन मन ही है। यही शीतल मन हकबीनी है, यही दीदार है और कबीर साहेब इसी के उपदेष्टा हैं। बाकी तो आनुषंगिक बातें हैं और उनको भी कहने का अवसर वे चूकते नहीं हैं।

आमूलचूल रूप में पूरे समाज का परिष्कार वे करते हैं। इसलिए उनकी वाणी का जितना मनन-चिंतन किया जायेगा उतना सर्वांग बोध होगा और फिर मैं दुहरा दूं कि कबीर की वाणी “कबीरपंथ” की वाणी नहीं है। वह आपकी वाणी है। वह आपका स्वर है। सत्य का स्वर है। जब आप उनको पढ़ेंगे तब आपको लगेगा कि यही सच है। इसलिए कबीर वाणी कबीरवाणी नहीं रह गयी है किंतु वह पूरी मनुष्यता की वाणी है।

अतएव हम कबीर की वाणी का मनन-चिंतन करें, उससे प्रेरणा लें। आज ‘कबीर जयन्ती’ के अवसर पर हम और आप यह प्रतिज्ञा करें कि हम जाति और वर्ण मानकर किसी को ऊंच-नीच नहीं मानेंगे। हम सब मनुष्य हैं और सब ही हमारे समान इंसान हैं।

आप आज यह संकल्प करें कि चमत्कार और अंधविश्वास से हम दूर होंगे और अपने मन को निर्मल करते हुए आध्यात्मिक पथ में चलेंगे और इसी जीवन में वह अवस्था अपनायेंगे जिसमें पूर्ण शांति और पूर्ण तृप्ति होगी। इसी बात के साथ मैं अपनी वाणी को विराम देता हूं। □